**चौथाई सदी :** संहारक रफ्तार

**बांग्लादेश चुनाव :** बदलाव की उम्मीद बेमानी

₹ 30/-

# सत्य सदैव

www.satyasadev.com PRGI NO : DELHIN/2017/74560 वर्ष:9, अंक:01, जनवरी-2026

निर्भीक, निष्पक्ष एवं निष्ठा के साथ

# वैश्विक गुंडागर्दी

## महाशक्ति का नैतिक पतन एवं सनक का एक साल

# KRISHNA MEDITECH™

## Innovating for Better Health

Trusted Manufacturer of Patient Monitoring Systems,
Ventilators, Medical Equipment & Advance Nursing Training Manikins

www.krishnameditech.in
info@krishnameditech.in

www.krishnameditech.in · info@krishnameditech.in

**+91 999611 2301**

# सत्य सदैव

निर्भीक, निष्पक्ष एवं निष्ठा के साथ

www.satyasadev.com PRGI NO : DELHIN/2017/74560

वर्ष:9, अंक:01, जनवरी-2026



| | |
|---|---|
| संपादक | राकेश कुमार |
| मुख्य कार्यकारी संपादक | श्रीराजेश |
| प्रबंध संपादक | शिव कुमार माहेश्वरी |
| सह-संपादक | प्रो. (डॉ) सतीश चंद्रा |
| सहायक संपादक | अरूणिमा चंद्रा |
| उप संपादक | संतु दास, मनोज कुमार |
| सहायक उप संपादक | विशाल श्योकंद |
| विधि संपादक | एडवोकेट राखी शर्मा |
| कला संपादक | अमर नंदी |
| मुख्य संवाददाता | प्रवेश शर्मा |
| जनसंपर्क अधिकारी | संगीता रानी |
| तकनीक व साइबर हेड | अनुज कुमार सिंह |
| प्रसार प्रबंधक | नीतिश भारद्वाज |
| विपणन प्रबंधक | संदीप जिंदल |
| चार्टर्ड अकाउंटेंट | शिव शंकर झा |

ब्यूरो

| | |
|---|---|
| दीप्तानु दास (अगरतला) | लक्की सिंह (भोपाल) |
| पंकज मौर्य (लखनऊ) | संजू जोशी (देहरादून) |
| आशीष कुमार (जयपुर) | अजय शर्मा ( श्री नगर) |
| अमित दास (गुवाहाटी) | नरेश आर्य (शिमला) |
| तेज सिंह (चंडीगढ़) | अजय कुमार( अहमदाबाद) |
| जितेन्द्र सिंह (रांची) | श्रीकांत (मुंबई) |



संपादकीय व कॉरपोरेट कार्यालय

एस 40, स्कूल ब्लॉक, शकरपुर,
नई दिल्ली-110092
ई-मेलः editor@satyasadev.com
वेबसाइटः www.satyasadev.com
दूरभाषः +91 9050 29 3293



उपरोक्त सभी पद अवैतनिक हैं। पत्रिका में प्रकाशित आलेखों में व्यक्त विचार पूर्णतः लेखकों के अपने हैं; सत्य-सदैव का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।



स्वामी,प्रकाशक,मुद्रक एवं संपादक **राकेश कुमार** द्वारा मेसर्स आला प्रिंटिंग प्रेस, 3636, कटरा दिना बेग, लालकुआं दिल्ली-110006-से मुद्रित कराकर 19बी, जनता फ्लैट्स, पीरागढ़ी, नई दिल्ली 110041 से प्रकाशित



सुधि पाठकों एवं सम्मानित लेखकों से विनम्र आग्रह है कि वे अपनी प्रतिक्रियाएँ एवं प्रकाशनार्थ रचनाएँ ई-मेल द्वारा editor@satyasadev.com पर प्रेषित करें।


## संपादकीय

# वर्ष 2026 : चुनौतियों का चौराहा

राकेश कुमार, संपादक

वर्ष 2026 की शुरुआत ऐसे समय में हो रही है जब दुनिया एक साथ कई मोर्चों पर अस्थिरता, संक्रमण और संभावनाओं के दौर से गुजर रही है। जनवरी का यह महीना केवल कैलेंडर का पन्ना नहीं बदलता, बल्कि हमें यह सोचने का अवसर भी देता है कि मानवता किस दिशा में आगे बढ़ रही है – संवेदना की ओर या केवल शक्ति और लाभ की दौड़ में।

भारत की राजनीति इस समय एक निर्णायक चरण में है। 2024 के आम चुनावों के बाद गठित सरकार के लिए 2026 पहला ऐसा वर्ष है, जब नीतियों के परिणाम ज़मीन पर दिखने चाहिए। आर्थिक विकास के दावे, बुनियादी ढांचे का विस्तार और 'विकसित भारत' का लक्ष्य तभी सार्थक होगा जब बेरोज़गारी, महंगाई और सामाजिक विषमता जैसे मुद्दों पर ठोस राहत मिले। दुर्भाग्य से, राजनीतिक विमर्श का बड़ा हिस्सा अब भी ध्रुवीकरण, पहचान की राजनीति और चुनावी लाभ तक सीमित दिखाई देता है। लोकतंत्र की मजबूती के लिए ज़रूरी है कि संसद और समाज दोनों में संवाद, असहमति और संस्थागत संतुलन को पुनः केंद्र में लाया जाए।

वैश्विक परिदृश्य भी कम चुनौतीपूर्ण नहीं है। रूस-यूक्रेन युद्ध ने भले ही तीव्रता कुछ खोई हो, लेकिन उसके भू-राजनीतिक और आर्थिक झटके अभी भी पूरी दुनिया महसूस कर रही है। पश्चिम एशिया में अस्थिरता, ताइवान को लेकर चीन-अमेरिका तनाव और अफ्रीका में बढ़ते संघर्ष, हाल में वेनेजुएला का प्रकरण यह संकेत दे रहे हैं कि वैश्विक व्यवस्था एक नए शक्ति-संतुलन की तलाश में है। आर्थिक मोर्चे पर, ऊंची ब्याज दरें, कर्ज़ का बढ़ता बोझ और आपूर्ति श्रृंखला की अनिश्चितता विकासशील देशों के लिए गंभीर चिंता का विषय बनी हुई है।

इसी बीच, जलवायु संकट मानवता के लिए सबसे बड़ा साझा प्रश्न बनकर उभरा है। 2025 में देखे गए भीषण तापमान, बाढ़ और सूखे की घटनाएं चेतावनी हैं कि अब पर्यावरण को 'भविष्य का मुद्दा' मानने की गुंजाइश नहीं बची। 2026 में सरकारों, उद्योगों और समाज को मिलकर जलवायु न्याय, स्वच्छ ऊर्जा और सतत विकास को प्राथमिकता देनी होगी।

नए वर्ष की यह शुरुआत हमें याद दिलाती है कि तकनीक, अर्थव्यवस्था और राजनीति का अंतिम उद्देश्य मानव कल्याण होना चाहिए। युद्ध, नफरत और अंधी प्रतिस्पर्धा के इस दौर में करुणा, सहयोग और न्याय ही वे मूल्य हैं जो दुनिया को स्थिरता की ओर ले जा सकते हैं। 2026 मानवता के लिए एक और परीक्षा है—प्रश्न यह है कि क्या हम इससे कुछ सीखेंगे, या वही पुरानी गलतियां दोहराएंगे। ●

# न्यूक्लियर फ्यूज़न: सृजन की ऊर्जा

श्रीराजेश
मुख्य कार्यकारी संपादक

कभी-कभी विज्ञान केवल प्रयोगशालाओं की चारदीवारी में सिमटा कोई प्रयोग नहीं होता—वह मानवता के अस्तित्व को बचाने के लिए की गई एक गहरी 'साधना' बन जाता है। न्यूक्लियर फ्यूज़न यानी परमाणु संलयन मेरे लिए केवल एक तकनीकी शब्द नहीं है, बल्कि यह उस आदिम सत्य की खोज है जो करोड़ों मील दूर सूर्य और सितारों के भीतर धड़क रहा है। यह ब्रह्माण्ड के उस मूल मंत्र को अपनी मुट्ठी में कैद करने की कोशिश है, जो मानवता को असीमित ऊर्जा की अनंत गोद में बिठा सकता है।

परमाणु विखंडन में हमने भारी नाभिकों को तोड़कर ऊर्जा निकालना सीखा—वहां विनाश की कोख से शक्ति जन्म लेती थी। लेकिन संलयन (फ्यूजन) जोड़ने की कथा है। यह अलगाव नहीं, मिलन का उत्सव है। जब हाइड्रोजन के हल्के नाभिक आपस में जुड़कर हीलियम बनते हैं, तो वे उतनी ही ऊर्जा मुक्त करते हैं जितनी शायद हमारी कल्पनाओं के संसार को रोशन करने के लिए पर्याप्त हो। एक ग्राम ईंधन से 10 टन कोयले के बराबर ऊर्जा मिलना विज्ञान नहीं, एक जादुई यथार्थ की तरह लगता है।

भारत जैसे देश के लिए, जहां की मिट्टी में 'सूर्य देव' की पूजा सदियों से रची-बसी है, यह तकनीक केवल ऊर्जा का विकल्प नहीं, बल्कि हमारी बढ़ती आकांक्षाओं की 'प्राणवायु' है। लगभग डेढ़ अरब लोगों के सपनों को उड़ान देने के लिए हमें जिस निरंतर और कार्बन-मुक्त ऊर्जा की आवश्यकता है, वह फ्यूज़न के बिना अधूरी है। यह हमारे लिए एक 'गांठ' की तरह है—ऊर्जा की वह कमी जो हमें दशकों से कचोटती रही है, उसे खोलने की चाबी अब हमारे वैज्ञानिकों के हाथों में है।

गांधीनगर स्थित 'प्लाज्मा अनुसंधान संस्थान' में जब 'आदित्य' और 'SST-1' जैसे टोकामक रिएक्टर सक्रिय होते हैं, तो वे केवल प्लाज्मा को नियंत्रित नहीं करते, वे भारत के भविष्य को आकार देते हैं। यह देखना सुखद है कि भारत केवल एक दर्शक नहीं, बल्कि 'ITER' जैसी वैश्विक परियोजना में एक गौरवशाली साझीदार है। फ्रांस की धरती पर बन रहा वह 'कृत्रिम सूर्य' वास्तव में पूरी दुनिया की सामूहिक जिजीविषा का प्रतीक है, जहां भारत अपने तकनीकी कौशल से रोशनी भर रहा है।

**क्या विज्ञान केवल प्रयोग है या मानवता के अस्तित्व को बचाने का महायज्ञ? न्यूक्लियर फ्यूजन के बहाने ब्रह्मांड के उस आदिम सत्य की खोज, जो भारत और दुनिया के लिए असीमित ऊर्जा का नया सवेरा ला सकती है।**

लेकिन यह यात्रा फूलों की सेज नहीं है। 150 मिलियन डिग्री सेल्सियस का तापमान—जो सूर्य के केंद्र से भी दस गुना अधिक है—उसे धरती पर एक मशीन के भीतर संभालना किसी अग्नि-परीक्षा से कम नहीं है। यह सिर्फ मैटेरियल साइंस या मैग्नेटिक फील्ड की चुनौती नहीं है, यह मनुष्य के धैर्य और उसकी सीमाओं से टकराने का साहस है। जब दिसंबर 2022 में कैलिफोर्निया की लैब में पहली बार 'इग्निशन' (शुद्ध ऊर्जा लाभ) प्राप्त हुआ, तो वह क्षण वैसा ही था जैसे किसी नवजात की पहली किलकारी—एक प्रमाण कि हम अंधेरे पर विजय पा सकते हैं।

भारत के लिए फ्यूज़न का अर्थ केवल बिजली उत्पादन नहीं है। यह हमारी अर्थव्यवस्था में 6.8 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर जोड़ने का सामर्थ्य रखता है। जब हम निजी क्षेत्र और सरकारी संस्थानों को इस यज्ञ में एक साथ लाते हैं, तो हम केवल एक उद्योग नहीं खड़ा करते, हम एक 'वैज्ञानिक पारिस्थितिकी तंत्र' का निर्माण करते हैं। यह रक्षा, अंतरिक्ष और चिकित्सा विज्ञान के बंद द्वारों को भी एक नई चाबी देता है। लेखन और विज्ञान में एक समानता है—दोनों ही अपनी 'अपूर्णता' से शुरू होते हैं और पूर्णता की तलाश करते हैं। फ्यूज़न भी मानवता का एक 'आत्मस्वीकार' है कि हमारे पास मौजूद संसाधन सीमित हैं, पर हमारी बुद्धि और संकल्प असीम। यह तकनीक हमें याद दिलाती है कि हम विनाशकारी ऊर्जा के बजाय सृजनात्मक ऊर्जा की ओर बढ़ रहे हैं।

अंततः, न्यूक्लियर फ्यूज़न वह 'उम्मीद की किरण' है जो हमें मनुष्य बनाए रखती है। यह इस बात का दस्तावेज़ है कि आने वाली पीढ़ियों को हम एक धुआं रहित, सुरक्षित और दैदीप्यमान भारत सौंप सकें। यदि हम अपनी धरती पर उस 'छोटा सूर्य' को उगाने में सफल रहे, तो यह मानव इतिहास का सबसे बड़ा 'सृजन' होगा। क्योंकि फ्यूज़न सिर्फ एक खोज नहीं, वह हमारी सभ्यता का अगला 'उजाला' है। ●

# इस अंक में खास...

## 14 वैश्विक गुंडागर्दी


भगवा एल्गोरिदम .....11
बस्तर का संधिकालकाल .....24
रामलीला मैदान की मुक्ति .....26
प्रतीक्षा की देहरी पर ठहरी देह.....30
डेटा पर पहरा .....34
ऑपरेशन सिंदूर के बाद .....37
जाति की ओट व कानून की चोट.....38
एमाइलोडिओसिस:.एक 'अदृश्य'.....41
एमाइलोडिओसिस:.एक 'अदृश्य'.....41
वैभव सूर्यवंशी: भविष्य का 'विराट'..44

## 04 चौथाई सदी: सहारक रफ्तार

यदि समय को समझने का कोई पैमाना हो, तो 21वीं सदी के पहले 25 वर्ष उस पर सबसे तेज़ और सबसे क्रूर निशान हैं। यह वह दौर है जब तकनीक ने गति दी, बाज़ार ने दिशा बदली और मनुष्य स्वयं अपनी रफ्तार का शिकार बन गया।

## 08 2026 की बिसात: अश्वमेघ की परीक्षा

वर्ष 2025 नि:संदेह भारतीय जनता पार्टी के राजनीतिक वर्चस्व का वर्ष रहा, लेकिन क्या 2026 की दहलीज पर खड़ा विपक्ष सत्ता के इस भारी पड़ते पलड़े को संतुलित कर पाएगा? यह प्रश्न आज भारतीय लोकतंत्र के केंद्र में है।

## बांग्लादेश चुनाव: बदलाव की उम्मीद बेमानी 20

बांग्लादेश में जमात-ए-इस्लामी जीते या बांग्लादेश नेशनलिस्ट पार्टी, बांग्लादेश के दिन बहुरते नहीं दीखते। चुनावी ऊंट किसी भी करवट बैठे वह बड़े बदलाव की उम्मीदों के लिये बेमानी ही साबित होगा।

## अवनीत का लहंगा और इंटरनेट की धड़कनें! 42

जलज श्रीवास्तव

# चौथाई सदी संहारक रफ़्तार

यदि समय को समझने का कोई पैमाना हो, तो 21वीं सदी के पहले 25 वर्ष उस पर सबसे तेज और सबसे क्रूर निशान हैं। यह वह दौर है जब तकनीक ने गति दी, बाज़ार ने दिशा बदली और मनुष्य स्वयं अपनी रफ्तार का शिकार बन गया। उपलब्धियों की चमक के पीछे सभ्यता के हांफने की आवाज़ साफ़ सुनी जा सकती है।

यदि समय एक शांत बहती नदी होती, तो ये बीते पच्चीस साल उस नदी में आए उस प्रलयंकारी प्रपात (वॉटरफॉल) की तरह हैं, जहां पानी गिरते समय केवल शोर करता है और झाग पैदा करता है। हम 2026 के उस मुहाने पर खड़े हैं, जहां पीछे मुड़कर देखने पर धुंध के सिवा कुछ नहीं दिखता। साल 2000 की वह सुबह, जब पूरी दुनिया 'मिलेनियम बग' के डर से सहमी हुई थी, आज किसी आदिम युग की स्मृति जैसी लगती है। मात्र एक चौथाई सदी में मनुष्य ने जितना कुछ बदला है, उससे कहीं अधिक वह स्वयं बदल गया है। आज हम उस 'फ्यूचर शॉक' के शिकार नहीं हैं जिसकी चेतावनी ऐल्विन टॉफ़लर ने दी थी, बल्कि हम उस आघात के भीतर जी रहे हैं—एक ऐसी सभ्यता के रूप में जिसका दम अपनी ही रफ़्तार से फूलने लगा है।

## स्मृति का निर्वासन और तकनीक का मायाजाल

टॉफ़लर ने मानव सभ्यता के 50,000 सालों को जिस 62 वर्ष के जीवन चक्र में बांटा था, वह गणित आज एक डरावनी सच्चाई बन चुका है। वह कहता था कि 800 जीवन चक्रों में से 650 गुफाओं में बीते। लेकिन बीते इस एक चौथाई जीवन चक्र (2000-2026) ने पिछले

800 चक्रों के संचित अनुभव को एक मलबे में तब्दील कर दिया है। हम एक ऐसी रफ़्तार के गुलाम हो चुके हैं जहां 'ठहरना' एक अपराध मान लिया गया है। इस रफ़्तार ने सबसे पहले हमारी 'स्मृति' की हत्या की है।

याद कीजिए वह दौर, जब हमें अपने प्रियजनों के फोन नंबर कंठस्थ होते थे, जब रास्तों के नक्शे हमारे दिमाग में छपे होते थे। आज हम एक ऐसी 'आउटसोर्स की गई बुद्धिमत्ता' के दौर में हैं, जहां हमारी याददाश्त गूगल के सर्वरों पर गिरवी रखी है। कृत्रिम मेधा के इस युग में हम सत्य और सूचना के बीच का अंतर भूल चुके हैं। हम भूल चुके हैं कि सन् 2000 की दुनिया कैसी थी—जहां मोबाइल एक विलासिता थी और इंटरनेट एक चमत्कार। 1995 में ज्योति बसु और सुखराम के बीच हुई उस पहली मोबाइल कॉल से लेकर आज घर-घर में मौजूद 'स्मार्टफोन' तक की यात्रा दरअसल मनुष्य के 'एकांत' की मृत्यु की यात्रा है। अब हमारे पास एकांत नहीं है, केवल 'नेटवर्क' है। जो सोशल मीडिया आज हमारी सांसों को नियंत्रित कर रहा है, वह कल का शिशु है—फेसबुक, व्हाट्सएप, ट्विटर (अब एक्स); ये सब इसी सदी की कोख से जन्मे और आज ये हमारे लोकतंत्र, हमारे संबंधों और हमारी सोच के मालिक बन बैठे हैं।

## हॉब्सबॉम की लंबी छाया और बदलती प्रवृत्तियां

इतिहासकार एरिक हॉब्सबॉम ने सदियों को कैलेंडर के पन्नों से नहीं, बल्कि प्रवृत्तियों के मिजाज से मापा था। उनकी 'लंबी उन्नीसवीं सदी' और 'संक्षिप्त बीसवीं सदी' के बाद जो इक्कीसवीं सदी आई है, वह 'तरल सदी' है। यहां कुछ भी ठोस नहीं है। साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद ने अब भूगोल की जगह 'डेटा' और 'बाज़ार' को अपना नया उपनिवेश बना लिया है। अब कब्ज़ा आपकी ज़मीन पर नहीं, आपकी पसंद पर है।

इक्कीसवीं सदी के इन 25 वर्षों में औद्योगिक क्रांति का भारी-भरकम शोर पीछे छूट गया और उसकी जगह सूचना क्रांति की महीन, अदृश्य और घातक तरंगों ने ले ली। अब मुख्यधारा का विमर्श बिखर चुका है। अस्मिताओं के नए स्वर फूट रहे हैं—अश्वेत आंदोलन, एलजीबीटीक्यू विमर्श, और भारत के संदर्भ में दलित, आदिवासी और महिला अस्मिताओं का यह उभार एक स्वागत योग्य कदम तो है, लेकिन इसके पीछे नवउदारवादी पूंजीवाद का वह क्रूर चेहरा भी छिपा है जो हर आंदोलन को एक 'प्रोडक्ट' (उत्पाद) में बदलकर बाज़ार में बेच देता है। साहित्य हो या कला, यथार्थवाद के पुराने ढांचे ढह चुके हैं और हम एक ऐसी 'उत्तर-सत्य' की दुनिया में हैं जहां कहानी से बड़ा उसका 'नैरेटिव' हो गया है।

## सामाजिक टूटन: अकेलापन जब सार्वजनिक हो जाए

इस सदी का सबसे रोमांचक लेकिन भयावह पहलू हमारी सामाजिक संस्थाओं का क्षरण है। परिवार, जो कभी हमारा सुरक्षा कवच था, अब एक 'ट्रांजिट कैंप' बन गया है। संयुक्त परिवार तो पिछली सदी की यादों में दफन हो गए, लेकिन इस सदी ने 'न्यूक्लियर फैमिली' के भी टुकड़े-टुकड़े कर दिए हैं। विवाह जैसी संस्था आज 'कन्फर्मेशन' और

'कैंसिलेशन' के बीच झूल रही है। 'लिव-इन' के प्रति बढ़ता आकर्षण केवल स्वतंत्रता की चाह नहीं है, बल्कि संबंधों की जिम्मेदारी से उपजा एक अनकहा डर भी है।

परिवर्तन की यह रफ़्तार इतनी तेज़ है कि समाज को विकल्प तैयार करने का मौका ही नहीं मिला। इसका परिणाम है—एक महामारी की तरह फैला अवसाद और अकेलापन। यह अकेलापन निजी नहीं है, यह सार्वजनिक है। जब हम मेट्रो में, हवाई अड्डों पर या दफ्तरों में सैकड़ों लोगों के बीच होते हुए भी अपने मोबाइल की स्क्रीन में गड़े होते हैं, तब हम सामूहिक रूप से अकेले होते हैं। यह असुरक्षा हमें वापस हमारे आदिम कबीलों की ओर ले जा रही है। यही कारण है कि तथाकथित शिक्षित समाज में भी जातिगत जकड़न और सांप्रदायिक उन्माद कम होने के बजाय और बढ़ा है। जब भविष्य डरावना लगता है, तो मनुष्य अपनी पुरानी पहचानों की ओट में छिपने की कोशिश करता है।

## भारत: चमकती जीडीपी और सिसकती जड़ें

इन पच्चीस सालों में भारत ने एक लंबी छलांग लगाई है, लेकिन इस छलांग के दौरान हमारे पैरों के नीचे की ज़मीन खिसक गई है। 40 करोड़ लोगों का वह 'उपभोक्ता वर्ग' जिसे हम गर्व से अपनी शक्ति बताते हैं, दरअसल एक ऐसा वर्ग है जिसने अपनी सांस्कृतिक जड़ें काटकर उसे बाज़ार के गमले में लगा लिया है। मध्यवर्ग अब 'उपभोक्ता' बन चुका है। वह गौरव जो कभी हमारी सादगी और बौद्धिकता में था, अब हमारी कारों के ब्रांड और हवाई यात्राओं के 'इकोनॉमी क्लास' के अनुभवों में सिमट गया है।

लेकिन इस चमक-धमक के पीछे एक काला सच विस्थापन का भी है। पूरा देश जैसे अपनी जड़ों से उखड़ा हुआ है। बिहार-यूपी के गांव जो कभी दिल्ली में पनाह खोजते थे, अब बेंगलुरु और हैदराबाद की गलियों में अपनी पहचान ढूंढ रहे हैं। शहरों में आसमान छूती अट्टालिकाओं के साये में जो झुग्गी-झोपड़ियां हैं, वे इस सदी के विकास की गवाह हैं। प्रदूषण और पर्यावरण का संकट अब महज़ सेमिनारों का विषय नहीं, बल्कि हमारे फेफड़ों की हकीकत है। आधे साल बाढ़ और आधे साल सूखे का यह चक्र हमारी उस तरक्की का परिणाम है जिसने कुदरत को एक 'रॉ मटेरियल' (कच्चा माल) समझ लिया।

## ठहराव की ज़िद और पाखंड का पुनरुत्थान

विडंबना देखिए कि एक तरफ हम 5G और अंतरिक्ष मिशनों की बात कर रहे हैं, दूसरी ओर उन्नीसवीं सदी की बीमारियां और बीसवीं सदी की बहसें आज भी हमारे गले की हड्डी बनी हुई हैं। जातिवाद का ज़हर और सांप्रदायिकता का अट्टहास यह बताता है कि तकनीक ने हमारे हाथों को तो आधुनिक बना दिया, लेकिन हमारी चेतना आज भी मध्यकालीन है। मैकाले की शिक्षा पद्धति से मुक्ति के नारे तो बहुत लगे, लेकिन वास्तविकता यह है कि हम आज भी उसी 'बाबू' मानसिकता के गुलाम हैं, फर्क सिर्फ इतना है कि अब बाबूगिरी कंप्यूटरों पर होती है।

विज्ञान और सूचना क्रांति के इस युग में 'बाबाओं' और 'स्वयंभू ईश्वरों' का बढ़ता साम्राज्य हमारी बौद्धिक विफलता का सबसे बड़ा प्रमाण है। जब ज्ञान सत्ता का गुलाम हो जाए और सूचना मनोरंजन बन जाए, तो समाज में तार्किक सोच की जगह अंधविश्वास ही लेता है। दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र होने का गर्व हमें तब तक शोभा नहीं देता, जब तक हमारे अपने ही नागरिकों को अपनी जड़ें साबित करने के लिए कागज़ों के ढेरों में अपनी पहचान खोजनी पड़े।

## अगली चौथाई सदी: एक गुरुत्तर दायित्व

2026 से 2050 तक की यात्रा और भी चुनौतीपूर्ण होने वाली है।

इन्हीं पच्चीस वर्षों में हमारी आज़ादी सौ साल की होगी और गांधी की शहादत भी। क्या हम उस आज़ादी का मर्म समझ पाएंगे जिसे गांधी ने 'अंतिम जन' की आंखों से देखा था? या हम केवल सांख्यिकी और जीडीपी के आंकड़ों में अपनी सफलता की कहानी पढ़ते रहेंगे?

ये बीते पच्चीस साल आत्म-पहचान के साल रहे हैं। हमने अपनी शक्ति को पहचाना है, हमने अंतरिक्ष में झंडे गाड़े हैं, हमने डिजिटल क्रांति में दुनिया का नेतृत्व किया है। लेकिन हमने अपनी सीमाओं को भी देखा है—वह सीमा जहां हमारी करुणा खत्म हो जाती है, जहां हमारी न्यायप्रियता पक्षपाती हो जाती है। विकास की इस अंधी दौड़ में सभ्यता का दम फूलने लगा है, और अब ज़रूरी है कि हम थोड़ा ठहरें।

इक्कीसवीं सदी की यह पहली चौथाई एक आईना है। इसमें हमारा चमकता हुआ चेहरा भी है और उसके पीछे छिपी असुरक्षा और हिंसा की झुर्रियां भी। आने वाली पीढ़ियां हमसे पूछेंगी कि जब तकनीक ने हमें सबकुछ जानने की शक्ति दी थी, तब हमने 'सत्य' को क्यों नहीं चुना? जब हमारे पास दुनिया को जोड़ने के साधन थे, तब हम खंडों में क्यों बंट गए?

अगली चौथाई सदी केवल चुनौतियों को पहचानने की नहीं, बल्कि खोई हुई मानवीयता को पुनः प्राप्त करने की होनी चाहिए। हमें एक ऐसा लोकतंत्र गढ़ना होगा जहां तकनीक मनुष्य की सेवा करे, न कि उसे अपना गुलाम बनाए। जहां विकास की ऊंचाई झुग्गियों की गहराई से न मापी जाए। गांधी और आज़ादी के मूल्यों को केवल उत्सवों तक सीमित न रखकर उन्हें अपनी जीवन पद्धति बनाना ही इस सदी का सबसे बड़ा रोमांच होगा।

समय भाप की तरह उड़ रहा है, स्मृतियां धुंधली हो रही हैं, और तकनीक हमारी आत्मा के दरवाज़े पर दस्तक दे रही है। इस मोड़ पर खड़ा मनुष्य शायद अपनी सभ्यता का सबसे अकेला लेकिन सबसे शक्तिशाली प्राणी है। क्या वह अपनी शक्ति का उपयोग संहार के लिए करेगा या सृजन के लिए? इक्कीसवीं सदी के पहले 25 साल इसी सवाल को छोड़कर जा रहे हैं। मलाल बहुत हैं, पर कमाल की गुंजाइश अभी खत्म नहीं हुई है। यह चौथाई सदी एक प्रस्थान बिंदु है—एक नई और अधिक मानवीय दुनिया की ओर, या फिर एक ऐसे अंधेरे की ओर जहां केवल मशीनों का शोर होगा और मनुष्य की आवाज़ कहीं खो जाएगी। निर्णय हमें लेना है, क्योंकि समय अब इंतज़ार नहीं करता। ●

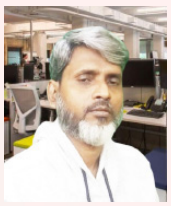

श्रीराजेश

वर्ष 2025 निःसंदेह भारतीय जनता पार्टी के राजनीतिक वर्चस्व का वर्ष रहा, लेकिन क्या 2026 की दहलीज पर खड़ा विपक्ष सत्ता के इस भारी पड़ते पलड़े को संतुलित कर पाएगा? यह प्रश्न आज भारतीय लोकतंत्र के केंद्र में है। सैद्धांतिक रूप से, 2026 की चुनौतियां दोनों पक्षों के लिए समान रूप से विभाजित दिखाई देती हैं, लेकिन इन चुनौतियों का सामना करने का ढंग ही यह निर्धारित करेगा कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और उनके राजनीतिक अश्वमेध के लिए 2029 की राह निष्कंटक होगी या बाधाओं से भरी।

# 2026 की बिसात अश्वमेध की परीक्षा

2026 का सूर्योदय अपने साथ चुनावी रणभेरी लेकर आया है। मार्च से मई के बीच तमिलनाडु, केरल, पश्चिम बंगाल, असम और पुडुचेरी जैसे राज्यों में सत्ता का महामुकाबला होना है। यह केवल पांच राज्यों के विधानसभा चुनाव नहीं हैं, बल्कि यह उस 'इण्डिया' गठबंधन की अग्निपरीक्षा है, जो भाजपा के विजय रथ को रोकने का दावा करता है। यहां भाजपा का मुक़ाबला उन क्षेत्रीय क्षत्रपों और गठबंधन के घटकों से है, जिन्होंने अपनी ज़मीन को बचाने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा रखा है।

## दक्षिण का अभेद्य दुर्ग और भगवा विस्तार की सीमाएं

तमिलनाडु और केरल भाजपा के लिए दक्षिण की वह अंतिम सीमा बने हुए हैं, जिसे पार्टी अपने अनंत संसाधनों और चुनावी मशीनरी के बावजूद अब तक भेदने में विफल रही है। यहां भाजपा की जीतें अब तक छिटपुट और अस्थाई ही रही हैं। तमिलनाडु में मुख्यमंत्री एम.के. स्टालिन के नेतृत्व वाला द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम (द्रमुक) अपने दूसरे कार्यकाल के लिए पूर्णतः आश्वस्त है। कांग्रेस यहां द्रमुक के एक विश्वसनीय और मज़बूत साझीदार के रूप में खड़ी है।

परंतु, कांग्रेस के भीतर एक ऐसा युवा गुट उभर रहा है, जो द्रमुक की छाया से बाहर निकलकर अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने के लिए लालायित

है। यह गुट, जो राहुल गांधी से अपनी निकटता का दावा करता है, नेतृत्व को अभिनेता विजय की नई पार्टी 'तमिलगा वेट्टी कड़गम' के साथ गठबंधन की संभावनाएं तलाशने की सलाह दे रहा है। इनका तर्क है कि द्रमुक की बैसाखी छोड़कर नए चेहरों के साथ जुड़ना पार्टी के भविष्य के लिए बेहतर होगा। इसके विपरीत, राज्य के पुराने और अनुभवी कांग्रेसी नेता इसे 'आत्मघाती' कदम मान रहे हैं। उनका मानना है कि चुनाव से ठीक तीन महीने पहले स्टालिन का साथ छोड़ना एक ऐसा दुस्साहस होगा जिसका खामियाजा पूरे विपक्ष को भुगतना पड़ेगा। फ़िलहाल कांग्रेस आलाकमान ने पुराने नेताओं की सलाह मानते हुए द्रमुक के साथ संबंधों में दरार न आने देने का निर्णय लिया है, लेकिन यह आंतरिक खींचतान गठबंधन की स्थिरता पर एक बड़ा प्रश्नचिन्ह है।

## बंगाल का रणक्षेत्र: चंडी और केसरिया सेना का आमना-सामना

पश्चिम बंगाल भाजपा के लिए एक 'अपूर्ण परियोजना' की तरह है, जहां पिछले एक दशक में केसरिया पदचाप कभी बढ़ी तो कभी थमी है। यहां भाजपा का मुक़ाबला ममता बनर्जी जैसी अदम्य योद्धा से है, जो हर वार का पलटवार उतनी ही तीव्रता से करने के लिए जानी जाती हैं। बंगाल की राजनीति आज एक ऐसे मोड़ पर है जहां समीकरण हर पल बदल रहे हैं।

सूत्रों की मानें तो कांग्रेस और तृणमूल कांग्रेस के बीच गुपचुप तरीके से 'पार्श्व-वार्ता' चल रही है। कांग्रेस अब वाम मोर्चे का साथ छोड़कर ममता बनर्जी के साथ हाथ मिलाने की संभावनाओं पर विचार कर रही है। दो साल पहले तक यह असंभव सा लगता था, क्योंकि ममता ने स्पष्ट कर दिया था कि वे बंगाल में किसी के साथ सीट साझा नहीं करेंगी। लेकिन राजनीति की नई चुनौतियों ने उन्हें अपना मन बदलने पर मजबूर किया है। सत्ताधारी दल के मुस्लिम वोट बैंक में सेंध लगाने की कोशिशें और मतुआ व राजबंशी समुदायों के बीच भाजपा की बढ़ती सक्रियता ने ममता को कांग्रेस के प्रति नरम होने का संकेत दिया है।

यदि बंगाल में यह गठबंधन आकार लेता है, तो इसके परिणाम केवल राज्य तक सीमित नहीं रहेंगे। तृणमूल के साथ कांग्रेस का जुड़ाव 'इण्डिया' गठबंधन को राष्ट्रीय स्तर पर एक स्थिरता प्रदान करेगा। इससे ममता बनर्जी की वह छवि भी बदलेगी जिसमें उन्हें कांग्रेस-विरोधी माना जाता था। यह गठबंधन भाजपा को उस राज्य में रोकने में सक्षम हो सकता है जिसे वह अपनी विस्तारवादी नीति का सबसे महत्वपूर्ण स्तंभ मानती है।

## असम: सांप्रदायिक प्रयोगशाला और विपक्ष का संघर्ष

असम, जो कभी कांग्रेस का अभेद्य गढ़ हुआ करता था, पिछले एक दशक में भाजपा की सांप्रदायिक राजनीति की सबसे बड़ी प्रयोगशाला बनकर उभरा है। यहां भाजपा ने ध्रुवीकरण की राजनीति को एक नई धार दी है, जबकि कांग्रेस और अन्य क्षेत्रीय दल केवल अपना अस्तित्व बचाने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। असम के चुनाव यह तय करेंगे कि क्या विपक्ष यहां भाजपा के 'सांप्रदायिक विमर्श' का कोई ठोस जवाब ढूंढ पाया है या नहीं। 2026 का परिणाम यह भी स्पष्ट करेगा कि क्या विकास के दावों के नीचे दबी पहचान की राजनीति अब भी भाजपा का

सबसे मज़बूत हथियार बनी हुई है।

## 2026 से 2029 की राह: एक राजनीतिक दिशाबोध

इन राज्यों के चुनाव परिणाम केवल राज्य सरकारों का भाग्य तय नहीं करेंगे, बल्कि 2029 के लोकसभा चुनावों के लिए राजनीतिक नैरेटिव की आधारशिला रखेंगे। इसके बाद 2027 में सात और 2028 में नौ राज्यों में चुनाव होने हैं। विपक्ष के लिए 2026 के चुनाव यह सिद्ध करने का अवसर हैं कि वह भाजपा के मुक़ाबले एक विश्वसनीय और वैकल्पिक शक्ति के रूप में खड़ा हो सकता है।

विपक्ष की सबसे बड़ी चुनौती उसकी आंतरिक असंगति रही है। 'इण्डिया' गठबंधन के भीतर अहंकार का टकराव, क्षेत्रीय महत्त्वाकांक्षाएं और आपसी अविश्वास अक्सर साझा रणनीति पर भारी पड़ जाते हैं। भाजपा इसी दरार का लाभ उठाकर खुद को एकमात्र स्थिर और निर्णायक शक्ति के रूप में पेश करती है। यदि 2026 में विपक्ष तमिलनाडु और बंगाल जैसे राज्यों में अपनी पकड़ मज़बूत रख पाता है, तो यह कार्यकर्ताओं के मनोबल के लिए एक संजीवनी का काम करेगा।

## कांग्रेस की जड़ता और पुनरुत्थान की चुनौती

2014 के बाद से भाजपा जो अपराजेय चुनावी मशीनरी बन चुकी है, उसका मुक़ाबला करने के लिए विपक्ष, विशेषकर कांग्रेस को अभी बहुत मशक्कत करनी होगी। कांग्रेस आज भी संगठनात्मक, वैचारिक और ढांचागत समस्याओं से घिरी हुई है। जनवरी 2026 में कांग्रेस ने मनरेगा को समाप्त किए जाने के विरुद्ध राष्ट्रव्यापी विरोध प्रदर्शन का आह्वान किया है। मोदी सरकार द्वारा मनरेगा के स्थान पर 'विकसित भारत-रोज़गार एवं आजीविका मिशन' लाना कांग्रेस को एक ऐसा मुद्दा दे सकता है, जिस पर वह किसानों के आंदोलन जैसा मज़बूत जन-अभियान खड़ा कर सके।

परंतु, कांग्रेस के भीतर ही यह संशय है कि क्या यह विरोध केवल एक 'प्रतीकात्मक' कार्य बनकर रह जाएगा? संगठन की निष्क्रियता और अनुशासनहीनता पार्टी की सबसे बड़ी कमज़ोरी है। दिग्गज नेता दिग्विजय सिंह की हालिया टिप्पणियां संगठन के भीतर बढ़ते असंतोष और जड़ता की ओर इशारा करती हैं। कांग्रेस अध्यक्ष मल्लिकार्जुन खड़गे को यह तय करना होगा कि पार्टी पदाधिकारियों का आगामी फेरबदल केवल 'गांधी परिवार के चाटुकारों' को पुरस्कृत करने का अभ्यास न बनकर रह जाए, बल्कि पार्टी को एक नई ऊर्जा प्रदान करे।

राजनीतिक विश्लेषकों का एक बड़ा वर्ग प्रियंका गांधी वाड्रा के लिए एक स्पष्ट और प्रभावी भूमिका की मांग कर रहा है। माना जाता है कि प्रियंका अपने भाई की तुलना में अधिक व्यवहारकुशल और राजनीतिक रूप से चतुर हैं। विपक्ष के पुनरुत्थान के लिए कांग्रेस का एक ऐसी पार्टी के रूप में उभरना अनिवार्य है, जो केवल ड्राइंग-रूम की चर्चाओं तक सीमित न रहकर सड़कों पर लड़ने के लिए तत्पर हो।

## जनगणना का वर्ष और राजनीतिक मानचित्र का पुनर्गठन

वर्ष 2026 एक और महत्वपूर्ण कारण से इतिहास में दर्ज होगा—पांच

**2026 का चुनावी वर्ष भारतीय राजनीति के लिए एक संक्रमणकाल का संकेत है, जहां जीत-हार से अधिक महत्त्व रणनीति, संगठन और धैर्य का है। पांच राज्यों के विधानसभा चुनाव भाजपा के वर्चस्व और विपक्ष की प्रासंगिकता—दोनों की परीक्षा हैं। क्षेत्रीय क्षत्रपों की जिद, कांग्रेस की निर्णायकता की कमी, बदलते सामाजिक समीकरण और जनगणना–परिसीमन जैसे कारक इस लड़ाई को जटिल बना रहे हैं। यह संघर्ष सत्ता का नहीं, बल्कि भविष्य के राजनीतिक नैरेटिव को गढ़ने का है।**

वर्षों की देरी के बाद होने वाली जनगणना। 1931 के बाद पहली बार जातिगत गणना के साथ होने वाली यह प्रक्रिया भारत के राजनीतिक परिदृश्य को पूरी तरह बदलने वाली है। इसके बाद निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन और लोकसभा व विधानसभाओं में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण का क्रियान्वयन होना है।

भाजपा निश्चित रूप से इस प्रक्रिया का उपयोग अपने चुनावी लाभ के लिए करने की कोशिश करेगी। निर्वाचन क्षेत्रों के पुनर्निर्धारण से उत्तर भारत के उन राज्यों का प्रभाव बढ़ सकता है जहां भाजपा की पकड़ मज़बूत है। हालांकि, यह प्रक्रिया इतनी जटिल और संवेदनशील है कि इसके झटकों से भाजपा भी अछूती नहीं रहेगी। विपक्ष के लिए चुनौती यह है कि वह इस बदलाव के बीच अपने लिए अवसर कैसे तलाशता है।

## सत्ता का गणित बनाम राजनीतिक कल्पनाशीलता

2026 के आगामी 12 महीने 'इण्डिया' गठबंधन को चुनावी समीकरणों से परे जाकर एक नई राजनीतिक कल्पनाशीलता विकसित करने का समय देंगे। आर्थिक चिंताएं, संघीय स्वायत्तता की मांग और बढ़ता सामाजिक तनाव विपक्ष के लिए नए प्रवेश द्वार खोल सकते हैं। लेकिन इसके लिए विपक्ष को केवल 'तदर्थ गठबंधन' से ऊपर उठकर एक निरंतर और समन्वित राजनीति करनी होगी।

जैसा कि बंगाल के एक वरिष्ठ सांसद ने कहा—चुनौती केवल चुनावी अंकगणित की नहीं, बल्कि उस सोच की है जो जनता को यह विश्वास दिला सके कि एक वैकल्पिक भारत संभव है। भाजपा का अश्वमेध रथ अपनी पूरी शक्ति के साथ दौड़ रहा है, लेकिन 2026 की ज़मीन पर मौजूद चुनावी गड्ढे और विपक्ष की नई रणनीतियां यह तय करेंगी कि 2029 का रास्ता कितना सुगम होगा। यह साल नेतृत्व के परीक्षण का है, संगठन के कायाकल्प का है और सबसे महत्वपूर्ण—लोकतंत्र की जीवंतता को सिद्ध करने का है। 2026 की चुनावी बिसात बिछ चुकी है, अब देखना यह है कि मोहरों की चाल कौन अधिक चतुराई से चलता है। ●

विश्लेषण

# भगवा एल्गोरिदम

## ममता के दुर्ग पर डेटा-प्रहार

संतु दास

पश्चिम बंगाल की राजनीति अब तक नारों, सड़कों और टकरावों की भाषा में बोलती रही है, लेकिन 2026 के चुनावों से पहले भाजपा इस व्याकरण को तोड़ने पर आमादा है। 'खेला होबे' की भावनात्मक राजनीति के बरअक्स, पार्टी ने इस बार डेटा, वोट मार्जिन और बूथ-स्तरीय गणित को हथियार बनाया है। बंगाल अब रैलियों का नहीं, एल्गोरिदम का रणक्षेत्र बनता दिख रहा है।

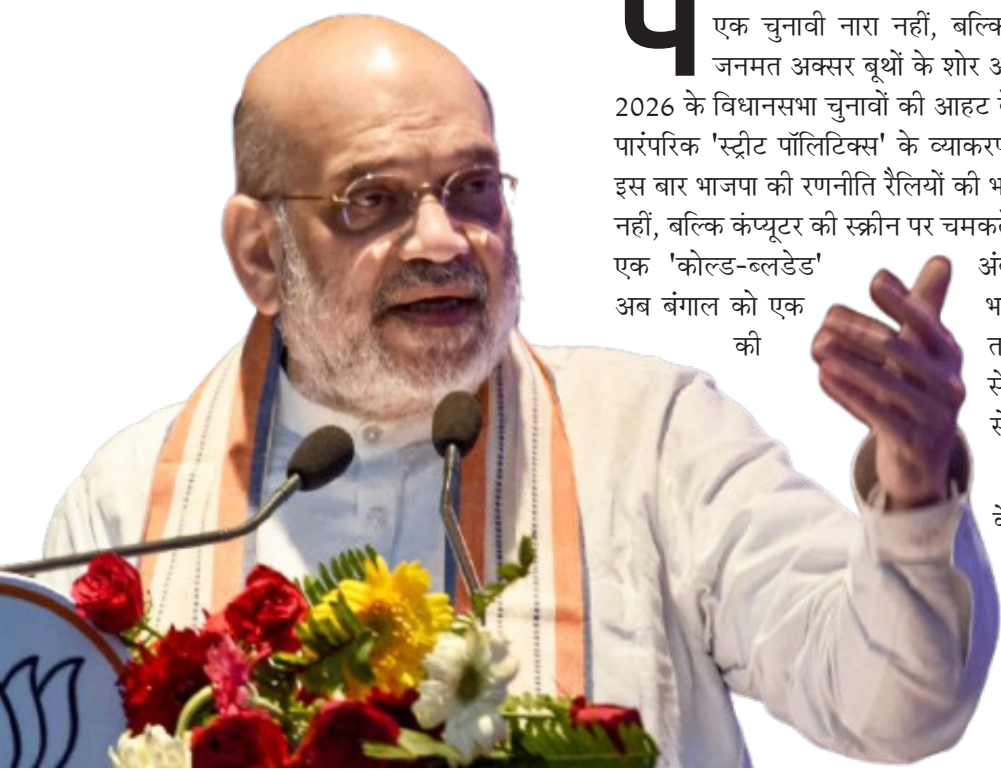

पश्चिम बंगाल की राजनीति हमेशा से ही भावनाओं, नारों और सड़कों पर होने वाले रक्तरंजित संघर्षों की एक महागाथा रही है। यहां 'खेला होबे' केवल एक चुनावी नारा नहीं, बल्कि सत्ता के उस क्रूर खेल का प्रतीक है जहां जनमत अक्सर बूथों के शोर और बाहुबल के बीच कहीं दब जाता है। लेकिन 2026 के विधानसभा चुनावों की आहट के बीच, भारतीय जनता पार्टी ने बंगाल की इस पारंपरिक 'स्ट्रीट पॉलिटिक्स' के व्याकरण को पूरी तरह बदलने का फैसला किया है। इस बार भाजपा की रणनीति रैलियों की भारी भीड़ या हाई-प्रोफाइल दलबदल के शोर से नहीं, बल्कि कंप्यूटर की स्क्रीन पर चमकते डेटा, निर्वाचन क्षेत्र-वार गहन विश्लेषण और एक 'कोल्ड-ब्लडेड' अंकगणितीय घेराबंदी से तैयार हो रही है। भाजपा अब बंगाल को एक भावुक युद्धक्षेत्र के बजाय एक गणितीय पहेली की तरह देख रही है, जहां सफलता का मार्ग नारों से नहीं बल्कि 'वोट मार्जिन' के कठोर यथार्थ से गुजरता है।

पार्टी के रणनीतिकारों ने 2019 और 2024 के लोकसभा परिणामों तथा 2021 की हार के मलबे से वह जादुई संख्या खोजने की प्रक्रिया शुरू की है जो उसे कोलकाता के 'राइटर्स बिल्डिंग' की सत्ता तक पहुंचा सके। इस नई रणनीति का सबसे साहसी और शायद सबसे चौंकाने वाला हिस्सा वह निर्णय है, जिसमें

भाजपा ने राज्य की लगभग 50 अल्पसंख्यक बहुल सीटों को अपनी मुख्य चुनावी गणना से 'संरचनात्मक रूप से' बाहर कर दिया है। पार्टी का मानना है कि इन सीटों पर संगठनात्मक और सामाजिक दीवारें इतनी ऊंची हैं कि वहां ऊर्जा खपाना संसाधनों की बर्बादी मात्र है। इस 'यथार्थवादी त्याग' के माध्यम से भाजपा ने अपने लिए सत्ता का रास्ता छोटा और स्पष्ट कर लिया है। अब उसका पूरा संकेंद्रण उन शेष सीटों पर है जहां भगवा झंडा या तो पहले लहरा चुका है या जहां जीत का अंतर इतना कम है कि उसे मामूली प्रयास से पाटा जा सकता है।

भाजपा का यह नया आत्मविश्वास 162 विधानसभा सीटों के उस विशिष्ट भूगोल पर टिका है, जहां पिछले तीन चुनावी चक्रों में पार्टी ने लगातार मज़बूत उपस्थिति दर्ज कराई है। इनमें से 60 सीटें ऐसी हैं जहां 2019 से लेकर 2024 तक भाजपा ने निरंतर बढ़त बनाई रखी है, जबकि अन्य सीटों पर उसकी स्थिति 'स्ट्राइकिंग डिस्टेंस' के भीतर है। पार्टी का आंतरिक गणित कहता है कि इन लक्षित सीटों पर हार-जीत का अंतर प्रति सीट मात्र 3,000 से 3,500 वोटों का है। यह कोई हिमालयी चुनौती नहीं, बल्कि एक ऐसी बाधा है जिसे 'बूथ मैनेजमेंट' और मतदाता सूची के विशेष पुनरीक्षण (एसआईआर) के जरिए आसानी से दूर किया जा सकता है। भाजपा का मानना है कि डुप्लीकेट और अयोग्य मतदाताओं की 'डिजिटल सफाई' ही टीएमसी के उस अदृश्य वोट बैंक को ध्वस्त कर देगी जो अंततः नतीजों को प्रभावित करता है।

इस पूरी चुनावी इंजीनियरिंग को धरातल पर उतारने के लिए भाजपा ने एक ऐसा नेतृत्व मॉडल तैयार किया है जो किसी एक स्थानीय चेहरे के करिश्मे पर नहीं, बल्कि 'त्रिकोणीय शक्ति' के एक सोचे-समझे समन्वय पर टिका है। इस त्रिकोण का शीर्ष नरेंद्र मोदी और अमित शाह की उस केंद्रीय साख से बना है, जो बंगाल के क्षितिज पर विकास और राष्ट्रवाद का एक व्यापक कैनवास तैयार करती है। यह केंद्रीय नेतृत्व ही वह धुरी है जो मतदाताओं को यह विश्वास दिलाता है कि बंगाल के कुशासन का विकल्प केवल दिल्ली के मज़बूत नेतृत्व से ही संभव है। लेकिन केवल केंद्रीय साख पर्याप्त नहीं थी, इसलिए इस त्रिकोण का दूसरा कोना सुवेंदु अधिकारी की मारक क्षमता से निर्मित किया गया है। विपक्ष के नेता के रूप में सुवेंदु अधिकारी उस 'ग्रिट' और साहस का प्रतीक हैं जो बंगाल की हिंसक और चुनौतीपूर्ण राजनीति में टिके रहने के लिए अनिवार्य है। टीएमसी के आंतरिक तंत्र की गहरी समझ रखने वाले अधिकारी का काम सीधे ममता बनर्जी के किले में सुराख करना और भ्रष्टाचार के मुद्दों पर उन्हें रक्षात्मक मुद्रा में लाना है।

इस नेतृत्व ढांचे का तीसरा और महत्वपूर्ण कोना राज्य अध्यक्ष समिक भट्टाचार्य का विजन है। भट्टाचार्य के कंधों पर उस 'भद्रलोक' और शहरी मध्यवर्ग को फिर से भाजपा की ओर खींचने की जिम्मेदारी है, जो केवल नारों से नहीं बल्कि निवेश, औद्योगिक पुनर्द्धार और रोजगार के ठोस रोडमैप से प्रभावित होता है। भट्टाचार्य का सौम्य लेकिन तर्कपूर्ण विजन भाजपा की उस छवि को संतुलित करता है जिसे अक्सर केवल आक्रामक बताया जाता है। यह त्रिकोणीय नेतृत्व - आक्रामकता, विजन और केंद्रीय साख - भाजपा के लिए वह इंजन है जो डेटा-आधारित इस रणनीति को गति प्रदान कर रहा है।

उत्तर बंगाल और मतुआ-बहुल क्षेत्रों में भाजपा का सामाजिक जुड़ाव अब महज़ एक आकस्मिक जीत नहीं, बल्कि राजनीतिक व्यवहार में आए एक स्थायी रूपांतरण का प्रमाण है। बनगांव से लेकर रानाघाट और मालदा के क्षेत्रों में बार-बार दर्ज की गई जीतें यह बताती हैं कि यहां की मिट्टी में भाजपा की जड़ें अब गहरी हो चुकी हैं। इसके साथ ही, पार्टी अब कोलकाता के आसपास के उन शहरी क्षेत्रों पर भी ध्यान केंद्रित कर रही है जहां वह 2019 और 2024 में बढ़त बनाने में सफल रही थी। भाजपा की यह नई घेराबंदी दलबदलुओं की भीड़ जुटाने के बजाय संगठन की पारदर्शिता और बूथ स्तर पर दबाव को रोकने की क्षमता पर टिकी है।

अंततः, भाजपा की यह रणनीति - जिसमें रैलियों के शोर के ऊपर डेटा के सन्नाटे को प्राथमिकता दी गई है - बंगाल की राजनीति में एक बड़े युगांतरकारी बदलाव का संकेत है। 2026 की लड़ाई अब केवल दो विचारधाराओं या दो नेताओं की टक्कर नहीं रह गई है, बल्कि यह ममता बनर्जी के व्यक्तिगत करिश्मे और भाजपा के संगठनात्मक एल्गोरिदम के बीच का महायुद्ध है। यदि 162 सीटों का यह गणित और नेतृत्व का यह त्रिकोणीय मॉडल सही दिशा में काम कर गया, तो बंगाल के इतिहास में 2026 वह साल होगा जब सांख्यिकी और वैज्ञानिक कूटनीति ने पारंपरिक सत्ता-तंत्र को मात दी। भाजपा ने इस बार ममता के खिलाफ कोई भावुक युद्ध नहीं छेड़ा है, बल्कि एक ऐसी वैज्ञानिक और रणनीतिक घेराबंदी की है जिसमें हार और जीत का फैसला अब सड़कों पर कम और डेटा शीट पर अधिक स्पष्ट नज़र आ रहा है। ●

# वैश्विक

आज से ठीक एक वर्ष पूर्व, जब वॉशिंगटन के बर्फीले धूसर आकाश के नीचे डोनाल्ड जे. ट्रंप ने दूसरी बार सत्ता की बागडोर संभाली थी, तब दुनिया एक अनिश्चित भय और संशय के दोराहे पर खड़ी थी। 20 जनवरी, 2026 की तारीख किसी महान उपलब्धि, किसी युगांतरकारी शांति समझौते या मानवीय प्रगति के किसी नए अध्याय के लिए याद नहीं की जाएगी। इसके विपरीत, यह दिन इतिहास के पन्नों में उस काले अध्याय की वर्षगांठ के रूप में दर्ज होगा, जब एक महाशक्ति ने 'विश्व गुरु' और 'लोकतंत्र के रक्षक' का चोला उतारकर एक 'वैश्विक गुंडे' की वर्दी पहन ली। पिछले बारह महीनों में व्हाइट हाउस से निकलने वाले आदेशों ने न केवल अंतरराष्ट्रीय कूटनीति की शालीनता को तार-तार किया है, बल्कि उस वैश्विक ढांचे की नींव हिला दी है जिसे द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका के बाद बड़ी मुश्किल से खड़ा किया गया था। ट्रंप का यह एक साल सत्ता के मद, अहंकार की पराकाष्ठा और संप्रभुताओं को कुचलने की एक ऐसी दास्तान है, जिसे आने वाली पीढ़ियां एक चेतावनी की तरह पढ़ेंगी।

इस बर्बरता और कूटनीतिक अराजकता का सबसे वीभत्स और नग्न प्रदर्शन लैटिन अमेरिका के आकाश के नीचे देखने को मिला। ट्रंप प्रशासन ने अंतरराष्ट्रीय कानूनों, संयुक्त राष्ट्र के चार्टर और सदियों पुरानी कूटनीतिक मर्यादाओं को पैरों तले रौंदते हुए वेनेजुएला के निर्वाचित राष्ट्रपति निकोलस मादुरो को गिरफ्तार करने का जो दुस्साहस किया, उसने सभ्य समाज की अंतरात्मा को झकझोर कर रख दिया

है। किसी संप्रभु राष्ट्र के राष्ट्राध्यक्ष के विरुद्ध इस प्रकार की सैन्य और न्यायिक डकैती केवल एक देश पर हमला नहीं थी, बल्कि यह ग्लोबल साउथ के हर उस देश के लिए एक सीधा खतरा था जो अमेरिका की धुन पर नाचने से इनकार करता है। निकोलस मादुरो की गिरफ्तारी का यह आदेश दरअसल उस औपनिवेशिक मानसिकता का पुनर्जन्म है, जहां एक शक्तिशाली देश खुद को दुनिया का न्यायाधीश, जूरी और जल्लाद समझने लगता है। ग्लोबल साउथ के देश - चाहे वे एशिया में हों, अफ्रीका में या लैटिन अमेरिका में - आज इस घटनाक्रम को एक ऐसी मिसाल के रूप में देख रहे हैं जहां अब अंतरराष्ट्रीय कानून की जगह 'व्हाइट हाउस की सनक' ने ले ली है। यह घटना केवल एक सत्ता परिवर्तन का प्रयास नहीं थी, बल्कि यह इस बात

राकेश कुमार

ट्रंप के दूसरे कार्यकाल का यह प्रथम वर्ष कूटनीतिक मर्यादाओं के विसर्जन और महाशक्ति के नैतिक पतन की गाथा है। संप्रभुताओं को कुचलने वाली सनक और अपमान की राजनीति ने सिद्ध कर दिया कि वाशिंगटन ने अब वैश्विक नेतृत्व का चोला त्यागकर 'वैश्विक गुंडे' की वर्दी पहन ली है। यह वर्ष इतिहास में मानवता के भरोसे के कत्ल और अहंकार के उदय का साक्षी बना।

# गुंडागर्दी

का ऐलान था कि अब दुनिया में कोई भी सुरक्षित नहीं है यदि वह वाशिंगटन के 'रियल एस्टेट' सौदों में फिट नहीं बैठता।

ट्रंप की यह छवि किसी दुष्प्रचार का परिणाम नहीं है, बल्कि उनके उन कृत्यों की परिणति है जिन्होंने उन्हें एक 'आततायी' के रूप में स्थापित किया है। उनके शासन के इस एक साल ने यह सिद्ध कर दिया है कि उनके लिए कूटनीति संवाद का माध्यम नहीं, बल्कि गला घोंटने का एक फंदा है। उनकी राजनीति का मूलमंत्र जो कभी 'अमेरिका फर्स्ट' हुआ करता था, अब 'अमेरिका अलोन' में तब्दील हो चुका है। अमेरिका ने अपने उन तमाम सहयोगियों की पीठ में छुरा घोंपा है जो दशकों से उसके कंधे से कंधा मिलाकर खड़े थे। ट्रंप के लिए गठबंधन एक बोझ हैं और अंतरराष्ट्रीय संस्थाएं एक अनावश्यक प्रपंच। उन्होंने संयुक्त राष्ट्र की प्रासंगिकता को धूल में मिला दिया, विश्व स्वास्थ्य संगठन से दोबारा नाता तोड़कर मानवता को

महामारियों के साये में अकेला छोड़ दिया और पेरिस जलवायु समझौते को एक 'धोखा' बताकर भविष्य की पीढ़ियों के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिन्ह लगा दिया। यह एक ऐसे व्यक्ति की कार्यप्रणाली है जो व्यवस्थाओं को बनाने में नहीं, बल्कि उन्हें ढहाने में आनंद पाता है।

इस एक साल के दौरान अमेरिका के भीतर की गलियों से लेकर उसकी सीमाओं तक जो दृश्य उभरे, वे मानवीय संवेदनाओं के पतन की पराकाष्ठा थे। अप्रवासियों के प्रति ट्रंप की घृणा और द्वेष की राजनीति ने एक ऐसा वातावरण निर्मित कर दिया है जहां केवल नस्लीय श्रेष्ठता का बोलबाला है। 'घुसपैठियों' और 'आक्रमणकारियों' जैसी जहरीली शब्दावली का उपयोग कर उन्होंने न केवल लाखों निर्दोष परिवारों को उजाड़ा, बल्कि अमेरिका के उस लोकतांत्रिक आत्मविश्वास को भी भीतर से खोखला कर दिया जो उसे दुनिया से अलग बनाता था। सीमा पर बनाई गई दीवार

केवल ईंट और पत्थर का ढांचा नहीं है, बल्कि वह उस नफरत का स्मारक है जो ट्रंप ने अपनी राजनीतिक रोटियां सेंकने के लिए खड़ी की है। मासूम बच्चों को उनके माता-पिता से अलग करने की क्रूरता को 'कानून का शासन' कहना दरअसल शब्दकोश का सबसे बड़ा अपमान है। यूरोप और एशिया के उदारवादी समाज आज अमेरिका की ओर देख रहे हैं और पूछ रहे हैं कि क्या यह वही देश है जो कभी दुनिया भर के सताए हुए लोगों को शरण देने का दंभ भरता था?

आर्थिक धरातल पर ट्रंप का राष्ट्रवाद किसी पुराने ज़माने के जागीरदार की सनक जैसा प्रतीत होता है। उन्होंने व्यापार को सहयोग का सेतु बनाने के बजाय उसे आर्थिक दंड देने के हथियार में तब्दील कर दिया है। चीन से लेकर यूरोपीय संघ तक और मैक्सिको से लेकर भारत तक, कोई भी उनके 'तटकर युद्ध' से अछूता नहीं रहा। सीमा शुल्क की दरों को जिस तरह एक खिलौने की तरह इस्तेमाल किया गया, उसने वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला की कमर तोड़ दी है। विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाएं, जो पहले से ही वैश्विक अस्थिरता से जूझ रही थीं, ट्रंप के इन मनमाने फैसलों के कारण विनाश के कगार पर पहुंच गई हैं। यह व्यापार नहीं, बल्कि एक प्रकार की 'आर्थिक डकैती' है, जहां महाशक्ति अपनी ताकत का इस्तेमाल कर दूसरे देशों के निवाले छीन रही है। ट्रंप का अर्थशास्त्र यह नहीं कहता कि 'सबका विकास हो', उनका दर्शन यह है कि 'दूसरों को बर्बाद कर अमेरिका आबाद हो'। यह 21वीं सदी की वैश्विक अर्थव्यवस्था को 19वीं सदी के साम्राज्यवाद की ओर ले जाने की कोशिश है।

दक्षिण एशिया के परिप्रेक्ष्य में ट्रंप का यह एक साल भारतीय कूटनीति के लिए सबसे बड़े मोहभंग का काल रहा है। भारत ने जिस रणनीतिक साझेदारी और भरोसे की बुनियाद पर पिछले दो दशकों की अपनी विदेश नीति की इमारत खड़ी की थी, उसे ट्रंप ने 'ऑपरेशन सिंदूर' के दौरान एक ही झटके में ढहा दिया। जब भारत अपनी सीमाओं की सुरक्षा और आतंकवाद के विरुद्ध एक निर्णायक और रक्षात्मक अभियान चला रहा था, तब वाशिंगटन का रुख न केवल निराशाजनक था, बल्कि वह शत्रुता की सीमा तक पाकिस्तान-परस्त दिखाई दिया। ट्रंप ने एक ऐसे देश का साथ दिया जो वर्षों से आतंकवाद की नर्सरी बना हुआ है, और वह भी केवल इसलिए क्योंकि उन्हें वहां से किसी तात्कालिक सौदे की गंध आ रही थी। भारत में इसे एक ऐसे विश्वासघात के रूप में देखा गया जिसे आने वाली पीढ़ियां नहीं भूलेंगी। ट्रंप ने यह स्पष्ट कर दिया कि उनके लिए भारत जैसा विशाल लोकतंत्र और सांस्कृतिक मित्र केवल तब तक महत्वपूर्ण है जब तक वह उनके व्यापारिक हितों की पूर्ति करता है। जिस क्षण

कूटनीतिक शुचिता की बात आती है, ट्रंप किसी भी मित्र की बलि चढ़ाने में संकोच नहीं करते।

रूस और यूक्रेन के बीच चल रहे महाविनाशकारी युद्ध को समाप्त करने के ट्रंप के वादे भी इस एक साल में खोखले और हास्यास्पद साबित हुए हैं। उन्होंने दावा किया था कि वे इस युद्ध को 'एक दिन' में रोक देंगे, लेकिन सच्चाई यह है कि युद्ध आज भी जारी है और उसकी आग और अधिक धधक रही है। परंतु, इस युद्ध से भी अधिक जिस दृश्य ने दुनिया को विचलित किया, वह था ओवल हाउस में यूक्रेनी राष्ट्रपति व्लादिमीर जेलेंस्की का किया गया सार्वजनिक अपमान। एक ऐसा नायक जो अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए महाशक्ति से लोहा ले रहा है, उसे एक 'सेल्समैन' कहकर उसका मज़ाक उड़ाना और उसे अपने पैरों की धूल समझना, ट्रंप की उस विकृत मानसिकता का परिचायक है जो केवल ताक़तवर के आगे दुम हिलाना जानती है और न्याय के लिए लड़ रहे कमजोर का उपहास करती है। जेलेंस्की का अपमान केवल एक व्यक्ति का अपमान नहीं था, बल्कि यह हर उस राष्ट्र का अपमान था जो अपनी स्वतंत्रता और संप्रभुता के लिए संघर्ष कर रहा है। ट्रंप का पुतिन के प्रति जो गुप्त अनुराग और जेलेंस्की के प्रति जो सार्वजनिक विद्वेष दिखा, उसने यूरोप के सुरक्षा ढांचे में ऐसी दरारें पैदा कर दी हैं जिन्हें भरना अब असंभव प्रतीत होता है।

ट्रंप की कूटनीतिक सनक की पराकाष्ठा तो तब देखने को मिली जब उन्होंने ग्रीनलैंड जैसे विशाल भूखंड को कब्जाने की अपनी पुरानी इच्छा को एक आधिकारिक एजेंडे में बदल दिया। डेनमार्क जैसे एक सम्मानित और मित्र राष्ट्र की संप्रभुता को इस तरह सरेआम नीलाम करने की कोशिश

**ट्रंप को 'वैश्विक गुंडा' कहना कोई अलंकारिक प्रयोग नहीं है, बल्कि यह उस कड़वी हकीकत का बयान है जिसे पिछले एक साल में पूरी दुनिया ने महसूस किया है। एक गुंडा वह होता है जो नियमों को केवल दूसरों के लिए बनाता है और खुद उन्हें तोड़ता है। ट्रंप ने अंतरराष्ट्रीय परमाणु संधियों से लेकर व्यापारिक समझौतों तक, हर उस दस्तावेज़ को रद्दी बना दिया जिस पर अमेरिका के हस्ताक्षर थे।**

करना यह दर्शाता है कि ट्रंप की नज़रों में राष्ट्रों की कोई गरिमा नहीं है। उनके लिए दुनिया एक बड़ा 'रियल एस्टेट' बाज़ार है जहां वे डॉलर के दम पर किसी का भी भूगोल बदल सकते हैं। ग्रीनलैंड का मामला केवल एक ज़मीन के टुकड़े का विवाद नहीं था, बल्कि यह उस औपनिवेशिक मानसिकता का पुनरुद्धार था जिसमें राष्ट्रों को वस्तु समझा जाता था। यूरोपीय देशों में इस व्यवहार को लेकर जो आक्रोश उपजा है, उसने ट्रांस-अटलांटिक संबंधों को इतिहास के सबसे निचले स्तर पर पहुंचा दिया है।

ट्रंप को 'वैश्विक गुंडा' कहना कोई अलंकारिक प्रयोग नहीं है, बल्कि यह उस कड़वी हकीकत का बयान है जिसे पिछले एक साल में पूरी दुनिया ने महसूस किया है। एक गुंडा वह होता है जो नियमों को केवल दूसरों के लिए बनाता है और खुद उन्हें तोड़ता है। ट्रंप ने अंतरराष्ट्रीय परमाणु संधियों से लेकर व्यापारिक समझौतों तक, हर उस दस्तावेज़ को रद्दी बना दिया जिस पर अमेरिका के हस्ताक्षर थे। उन्होंने अंतरराष्ट्रीय न्याय व्यवस्था और मानवाधिकार परिषदों का मज़ाक उड़ाया क्योंकि वे उनकी निरंकुशता के रास्ते में रोड़ा बन रहे थे। ट्रंप की समस्या किसी विशेष देश या संस्था से नहीं है, उनकी समस्या उस हर व्यवस्था से है जो उन्हें जवाबदेह बनाती है। वे एक ऐसी दुनिया चाहते हैं जहां केवल उनकी आवाज़ सुनी जाए, जहां केवल उनके आदेश का पालन हो और जहां पूरी मानवता उनके चरणों में नतमस्तक हो।

इस एक साल के कार्यकाल का विश्लेषण करते हुए यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या अमेरिका अब भी दुनिया का नेतृत्व करने के योग्य बचा है? नेतृत्व केवल सैन्य शक्ति या आर्थिक प्रभुत्व से नहीं आता, नेतृत्व आता है नैतिक अधिकार से। ट्रंप ने अमेरिका के उस नैतिक अधिकार को पूरी तरह नष्ट कर दिया है। आज दुनिया के किसी भी कोने में अमेरिका को एक 'भरोसेमंद साथी' के रूप में नहीं देखा जाता। वह अब एक ऐसी अनिश्चित शक्ति बन चुका है जो कभी भी अपना पाला बदल सकती है, जो कभी भी अपने सहयोगियों को मझधार में छोड़ सकती है और जो अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए पूरी दुनिया को युद्ध की आग में झोंक सकती है। निकोलस मादुरो की

गिरफ्तारी का प्रयास और जेलेंस्की का अपमान उस 'सॉफ्ट पावर' की मृत्यु का विज्ञापन है, जिस पर कभी अमेरिका को नाज़ था।

ट्रंप का यह एक साल अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के साथ निरंतर टकराव का भी रहा है। उन्होंने हर उस मंच को कमजोर करने का प्रयास किया जो समानता की बात करता है। उनकी भाषा में कूटनीति के लिए कोई स्थान नहीं है, वहां केवल धमकियां हैं। जब वे किसी देश के प्रमुख से मिलते हैं, तो वह मुलाकात दो राष्ट्रों के बीच की बातचीत नहीं, बल्कि एक मालिक और गुलाम के बीच का संवाद प्रतीत होता है। उनकी इस कार्यशैली ने दुनिया भर के तानाशाहों और निरंकुश शासकों को एक नया हौसला दिया है। अगर दुनिया की सबसे बड़ी लोकतान्त्रिक शक्ति का प्रमुख ही गुंडागर्दी पर उतर आए, तो फिर छोटे तानाशाहों को कौन रोकेगा? ट्रंप ने अनजाने में ही सही, पूरी दुनिया में एक ऐसे युग की शुरुआत कर दी है जहां 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का सिद्धांत ही सर्वोच्च होगा।

ग्लोबल साउथ के देशों के लिए यह सबसे अधिक चिंताजनक कालखंड है। वेनेजुएला में जो हुआ, वह कल किसी भी विकासशील राष्ट्र के साथ हो सकता है। ट्रंप प्रशासन ने संप्रभुता के जिस सिद्धांत को दफन करने की कोशिश की है, वह अंतरराष्ट्रीय शांति के लिए सबसे बड़ा खतरा है। यदि किसी देश का राष्ट्रपति केवल इसलिए गिरफ्तार किया जा सकता है क्योंकि वह वाशिंगटन की नीतियों से सहमत नहीं है, तो फिर राष्ट्रों की सीमाओं और उनके संविधानों का क्या अर्थ रह जाएगा? यह एक प्रकार का 'न्यायिक साम्राज्यवाद' है, जो पुरानी बंदूकों वाले साम्राज्यवाद से भी अधिक खतरनाक है।

ट्रंप के एक साल ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि वे केवल बाहरी दुनिया के लिए ही नहीं, बल्कि स्वयं अमेरिका के भविष्य के लिए भी एक गंभीर चुनौती हैं। उन्होंने अमेरिका के संस्थानों, उसकी न्यायपालिका और उसकी प्रेस को जिस तरह से निशाना बनाया है, उसने वहां के लोकतंत्र को भीतर से जर्जर कर दिया है। एक ऐसा राष्ट्रपति जो अपने ही देश की संस्थाओं का सम्मान नहीं करता, वह वैश्विक संस्थाओं का सम्मान भला कैसे करेगा? ट्रंप की राजनीति डर पर आधारित है—भीतर अप्रवासियों का डर और बाहर दूसरे देशों का डर। इसी डर की खेती कर वे अपनी सत्ता को सुरक्षित रखना चाहते हैं।

जैसे-जैसे हम 2026 के इस पड़ाव से आगे बढ़ रहे हैं, दुनिया के सामने सबसे बड़ा सवाल यह है कि क्या ट्रंप के इस 'गुंडा तंत्र' का कोई विकल्प है? क्या शेष विश्व - चीन, यूरोप, भारत और ग्लोबल साउथ - मिलकर एक ऐसी बहुध्रुवीय व्यवस्था बना सकते हैं जो अमेरिका की इस मनमानी पर अंकुश लगा सके? ट्रंप का यह एक साल उस व्यवस्था के अंत की शुरुआत है जिसे हम अब तक जानते थे। उन्होंने उस कांच के घर को पत्थर मार-मार कर तोड़ दिया है जिसमें पूरी दुनिया रहती थी। अब हमारे सामने केवल वह मलबा बचा है जिस पर एक नई और अनिश्चित दुनिया की नींव रखी जानी है।

निष्कर्षतः, डोनाल्ड ट्रंप का दूसरा कार्यकाल अपने पहले ही वर्ष में उस मुकाम पर पहुंच गया है जहां से वापसी का कोई रास्ता नहीं दिखता। उन्होंने अमेरिका को एक ऐसी शक्ति बना दिया है जो सम्मानित नहीं, बल्कि केवल डरावनी है। और इतिहास गवाह है कि जो शक्ति केवल डर पर टिकी होती है, वह कभी लंबे समय तक नेतृत्व नहीं कर पाती। वेनेजुएला के राष्ट्रपति निकोलस मादुरो के मामले में जो किया गया, वह ट्रंप के शासन का सबसे काला धब्बा है, जो हमेशा उन्हें एक 'वैश्विक गुंडे' के रूप में याद दिलाता रहेगा। दुनिया इस एक साल को कभी नहीं भूलेगी, क्योंकि इसी साल उसने देखा कि कैसे एक महाशक्ति ने अपनी आत्मा बेच दी और एक अहंकारी सम्राट के रूप में उभरकर पूरी मानवता को खतरे में डाल दिया। ट्रंप ने शायद अमेरिका को फिर से शक्तिशाली बनाने का दावा किया हो, लेकिन उन्होंने उसे दुनिया की नज़रों में इतना छोटा कर दिया है कि उसकी भरपाई करने में अब दशकों लग जाएंगे। यह नेतृत्व का पतन है, यह कूटनीति का अंत है और यह उस वैश्विक अराजकता का उदय है जिसका परिणाम अभी पूरी दुनिया को भुगतना बाकी है। ट्रंप का एक साल - जब अमेरिका ने नेतृत्व छोड़ा और दुनिया ने केवल एक 'वैश्विक गुंडे' को देखा।

# वेनेजुएला: ट्रंप का प्रहार और संप्रभुता का अंत

उस स्याह रात ने लैटिन अमेरिका के इतिहास को हमेशा के लिए बदल दिया। जब अमेरिकी बमवर्षक विमानों और विशेष बलों ने वेनेजुएला के आकाश को चीरते हुए काराकास पर धावा बोला, तो उसका उद्देश्य केवल एक कथित अपराधी को पकड़ना नहीं था, बल्कि शेष विश्व को यह दिखाना था कि अब वाशिंगटन का 'वैश्विक गुंडा' पूरी तरह सक्रिय हो चुका है। निकोलस मादुरो, जो कभी अपनी सत्ता के दुर्ग में सुरक्षित माने जाते थे, आज अपनी पत्नी के साथ अमेरिकी युद्धपोत 'आईवो जीमा' के एक तंग केबिन में बंदी बनकर न्यूयॉर्क की ओर बढ़ रहे हैं। यह दृश्य किसी रोमांचक फिल्म जैसा लग सकता है, लेकिन वास्तव में यह एक संप्रभु राष्ट्र की अस्मिता का विधिवत अंतिम संस्कार है।

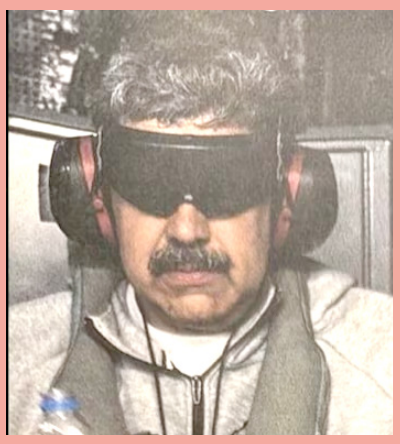

डोनाल्ड ट्रंप ने ओवल ऑफिस से बड़े गर्व के साथ घोषणा की, 'हम अमेरिकी शक्ति को पुनः स्थापित कर रहे हैं।' लेकिन यह 'शक्ति' नहीं, बल्कि एक निरंकुश नेतृत्व की वह सनक है जो नियमों को अपनी सुविधा के अनुसार मरोड़ना जानती है। मादुरो पर 'नार्कोटैररिज्म' और ड्रग तस्करी के आरोप भले ही अंतरराष्ट्रीय स्तर पर चर्चित हों, लेकिन एक निर्वाचित राष्ट्राध्यक्ष को उसके अपने देश से सैन्य बल के माध्यम से अगवा करना उन तमाम अंतरराष्ट्रीय संधियों के ताबूत में आखिरी कील है, जिन्हें सभ्य समाज ने बड़ी मुश्किल से गढ़ा था। ट्रंप प्रशासन का यह खुला दावा कि वे वेनेजुएला को 'तब तक स्वयं चलाएंगे जब तक एक न्यायपूर्ण सत्ता हस्तांतरण न हो जाए', सीधे तौर पर एक आधुनिक औपनिवेशिक शासन की आधिकारिक घोषणा है।

यह सैन्य दुस्साहस केवल वेनेजुएला के 'शासन परिवर्तन' तक सीमित नहीं है। ट्रंप ने अपनी नई राष्ट्रीय सुरक्षा रणनीति के तहत यह स्पष्ट कर दिया है कि अब पूरा पश्चिमी गोलार्ध उनकी व्यक्तिगत जागीर है। कोलंबिया और क्यूबा जैसे पड़ोसी देशों के लिए यह एक सीधी और खौफनाक चेतावनी है: 'या तो वाशिंगटन की धुन पर नाचो, या मादुरो जैसा हश्र भोगने को तैयार रहो।' यह कूटनीति नहीं, बल्कि 'बंदूक की नोक पर वर्चस्व' स्थापित करने का प्रयास है।

अब अमेरिका के कंधों पर उस देश के पुनर्निर्माण की जिम्मेदारी है जिसे उसने स्वयं एक युद्ध क्षेत्र में बदल दिया है। आठ मिलियन शरणार्थियों और भीषण आर्थिक मंदी से जूझता वेनेजुएला क्या सच में 'लोकतंत्र' की ओर बढ़ेगा? या फिर यह ट्रंप की उस 'रियल एस्टेट कूटनीति' का शिकार बनेगा जहां देशों को केवल लाभ-हानि के सौदों के रूप में देखा जाता है? आज काराकास की गलियों में सन्नाटा है, लेकिन ग्लोबल साउथ के देशों में एक सिहरन महसूस की जा सकती है - कि अब कोई भी सीमा सुरक्षित नहीं है, यदि वह ट्रंप के 'न्यू वर्ल्ड ऑर्डर' के रास्ते में आती है। यह कूटनीति के सूर्यास्त और 'वैश्विक गुंडागर्दी' के निर्बाध उदय की एक भयावह शुरुआत है। ●

## बांग्लादेश चुनाव 2026

# बदलाव की उम्मीद बेमानी

संजय श्रीवास्तव

**बांग्लादेश में जमात-ए-इस्लामी जीते या बांग्लादेश नेशनलिस्ट पार्टी, बांग्लादेश के दिन बहुरते नहीं दीखते। चुनावी ऊंट किसी भी करवट बैठे वह बड़े बदलाव की उम्मीदों के लिये बेमानी ही साबित होगा। नई सरकार तो बनेगी, सत्ता की सूरत भी बदलेगी लेकिन सीरत नहीं। भारत को भी किसी बड़े सकारात्मक बदलाव की उम्मीद लगाना अव्यावहारिक ही होगा।**

उम्मीद है बांग्लादेश में 20 फरवरी तक एक चुनी हुई सरकार सत्ता संभाल ले। ये चुनाव बहुत पहले होने चाहिये थे, 2024 को छात्रों के आंदोलन के बाद हसीना जब इस्तीफा दे भारत भाग आईं और 8 अगस्त को मुहम्मद यूनुस के नेतृत्व में एक अंतरिम सरकार का गठन हुआ तो उसने 6 महीने के भीतर चुनाव कराने का वादा किया था। खैर, शायद इस देरी ने भी बांग्लादेश को कुछ सियासी सबक सिखाएं हों और आगामी चुनावों में वह इस सबक का इस्तेमाल भी करे, लेकिन शायद ही देर आयद शायद दुरुस्त आयद हो। जाहिर है इन चुनावों के नतीजों का सबसे ज्यादा असर बांग्लादेश और बांग्लादेशियों पर होगा लेकिन चीन और पाकिस्तान की नजरें भी इस ओर हैं तो हमारी भी। सभी चाहते हैं कि बांग्लादेश में लोकतंत्र बहाल हो और वहां हिंसा रुके। हमारी चाहत है कि वहां हिंदुओं की सुरक्षा देने वाली स्थिर सरकार बने जिससे सीमा सुरक्षा, आतंकवाद-रोधी सहयोग और पूर्वोत्तर की स्थिरता को प्राथमिकता मिले, कपास आयात जैसे मसले और तीस्ता जल बंटवारे पर ठोस बातचीत हो सके। हम इस चुनाव को महज सत्ता परिवर्तन के रूप में नहीं देख रहे बल्कि क्षेत्रीय स्थिरता, सुरक्षा और भू-राजनीतिक संतुलन के एक निर्णायक मोड़ के बतौर ले रहे हैं। उधर, चीन की मंशा है कि उसकी आर्थिक घुसपैठ निरंतर रहे और उसके बेल्ट एंड रोड प्रोजेक्ट्स निर्बाध रहें। पाकिस्तान 'एंटी-इंडिया' भावना को मजबूत बनानी वाली और 1971 के मुद्दों पर नरम रुख रखने वाली सरकार चाहता है। अमेरिका-यूरोप की निगाह ऐसी सरकार पर है जो यूनुस

**बांग्लादेश में चालीस से अधिक पंजीकृत पार्टियां चुनाव मैदान में होने के वजूद मुकाबला 10 दलों वाले बांग्लादेश जमाते इस्लामी गठबंधन और बांग्लादेश नेशलिस्ट पार्टी यानी बीएनपी में ही हैं। शेख हसीन की आवामी लीग चुनाव से बाहर है तो मामला द्विदलीय हो गया है।**

के सुधारों का समर्थन करती हो। सबसे ज्यादा अपेक्षाएं बांग्लादेशियों की हैं। वे नई सरकार से आर्थिक सुधार, भ्रष्टाचार पर रोक, महंगाई पर नियंत्रण, बेरोजगारी दूर करना, बिजली की बेहतर आपूर्ति, संविधान में सुधार, कानून व्यवस्था की बहाली तथा आवामी लीग के अत्याचारों पर जवाबदेही चाहते हैं। धार्मिक कट्टरता या वैचारिक बहसें यहां आम मतदाता के लिए दोयम दर्जे के मुद्दे हैं। बेशक यह चुनाव राजनीतिक रूप से अंतरिम सरकार के सुधारों को परखेगा और कूटनीतिक तौर पर भारत-चीन-पाकिस्तान की क्षेत्रीय प्रतिस्पर्धा को प्रभावित करेगा लेकिन जो पार्टियां चुनावी मैदान में हैं उनके इतिहास, प्रवृत्ति, तौर तरीके तथा मौजूदा सियासी समीकरणों और देश के हालात को देखते हुए भारत- और बांग्लादेशियों की इच्छाएं, अपेक्षाएं पूरी होती नहीं दिखती हैं।

बांग्लादेश में चालीस से अधिक पंजीकृत पार्टियां चुनाव मैदान में होने के वजूद मुकाबला 10 दलों वाले बांग्लादेश जमात-ए-इस्लामी गठबंधन और बांग्लादेश नेशलिस्ट पार्टी यानी बीएनपी में ही हैं। शेख हसीन की आवामी लीग चुनाव से बाहर है तो मामला द्विदलीय हो गया है। जमात-ए-इस्लामी का मुख्य मुद्दा है इस्लामी कानून लागू करवा कर धार्मिक न्याय व शासन स्थापित करना, ,सेकुलर और समाजवाद को हटाना और पश्चिमी प्रभाव का विरोध। पहली नजर में ही यह बांग्लादेश के कुछ कट्टरपंथियों और पाकिस्तान के अलावा किसी और की अपेक्षा पूरी करेगी इसमें संदेह है। एनसीपी यानी नेशलिस्ट सिटेजन पार्टी जो पिछले साल ही युवा विद्रोह के दौरान बनी है फिलहाल भारी खटपट के बावजूद जमात-ए-इस्लामी के साथ है और खुद को "तीसरी ताकत के रूप में पेश कर रही है जबकि बीएनपी उसे महज वोट-कटवा मानती है। उसका लक्ष्य है, प्रखर राष्ट्रवाद, आर्थिक सुधार, भ्रष्टाचार विरोध, संस्थागत सुधार और युवा राजनीति को बढावा देना। बीएनपी का भी वादा राष्ट्रवाद, आर्थिक सुधार, सत्ता विकेंद्रीकरण है। एनसीपी अपेक्षाकृत नया और सीमित प्रभाव वाला अनुभवहीन उत्साही भारत विरोधी दल है इसलिये उससे कोई अपेक्षा पालना बेकार ही है। वैसे भी बांग्लादेश में वैकल्पिक राजनीति की बात करने वाली एनसीपी को जमात-ए इस्लामी की बी टीम भी कहा जा रहा है और वह जमात-ए-इस्लामी की छोड़ी हुई 19 सीटों पर ही लड़ रही है। अजब यह है कि जमात-ए-इस्लामी पिछले दिनों बीएनपी के साथ आने की मंशा जाहिर कर चुकी है, बीएनपी इसके लिये उत्सुक

नहीं है फिर भी ऐसे में गठबंधनों का चेहरा चुनाव या उसके बाद बदल सकता है।

सरकार की सूरत कुछ यूं बनती है, या तो बीएनपी अकेले सरकार बनाए या फिर वह जमात-ए-इस्लामी से सरकार बनाने में सहायता ले पर इसे औपचारिक गठबंधन का नाम न दे। अगर बीएनपी ज्यादा सीटें लाती है तो एनसीपी जमात-ए-इस्लामी का साथ छोड़ कर उससे हाथ मिला ले, वैसे इसके इमकान कम हैं, हालांकि राजनीति में क्या नहीं हो सकता। चुनाव में सबसे अहम है चुनाव से दूर आवामी लीग के मतदाता किधर जाते हैं। आवामी लीग के वोटरों की विचारधारा जमात-ए-इस्लामी के खिलाफ तो है पर उसके वोटरों का छोटा हिस्सा धार्मिक रूझान को समर्थन देते हुए ग्रामीण इलाकों में उसकी ओर जायेगा ही लेकिन वोट बैंक का बड़ा हिस्सा अगर जमात-ए-इस्लामी हथियाने में कामयाब रहता है तो वह बहुमत के आसपास नजर आ सकती है। लंबे समय से सत्ता से बाहर रहने के बीएनपी को सत्ता-विरोधी माहौल का फायदा मिल सकता है। 17 साल बाद स्वदेश लौटे खालिदा जिया के बेटे तारिक रहमान को जिया की मौत के बाद भावनात्मक लाभ मिल सकता है, उन्हें परिणाम को प्रभावित कर सकने वाला जनसमर्थन भी है और उन्हें प्रधानमंत्री के बतौर पेश भी किया जा रहा है। हालांकि अनुपस्थिति और विवादित छवि उन्हें "गेम-चेंजर" से ज्यादा "पोलराइज़िंग फ़ैक्टर" बनाती है। अगर सर्वे सही है कि बीएनपी 33 फीसद तो जमात 29 प्रतिशत और एनसीपी 16 फीसद मतदाताओं की पसंद हैं। युवाओं में भी पहली पसंद बीएनपी और दूसरी जमात-ए-इस्लामी है।

भले ही बीएनपी अभी आगे दीखती हो पर जमात-ए-इस्लामी भी बहुत पीछे नहीं है। उसने खुद को पुनर्गठित कर मजबूत दावेदारी पेश

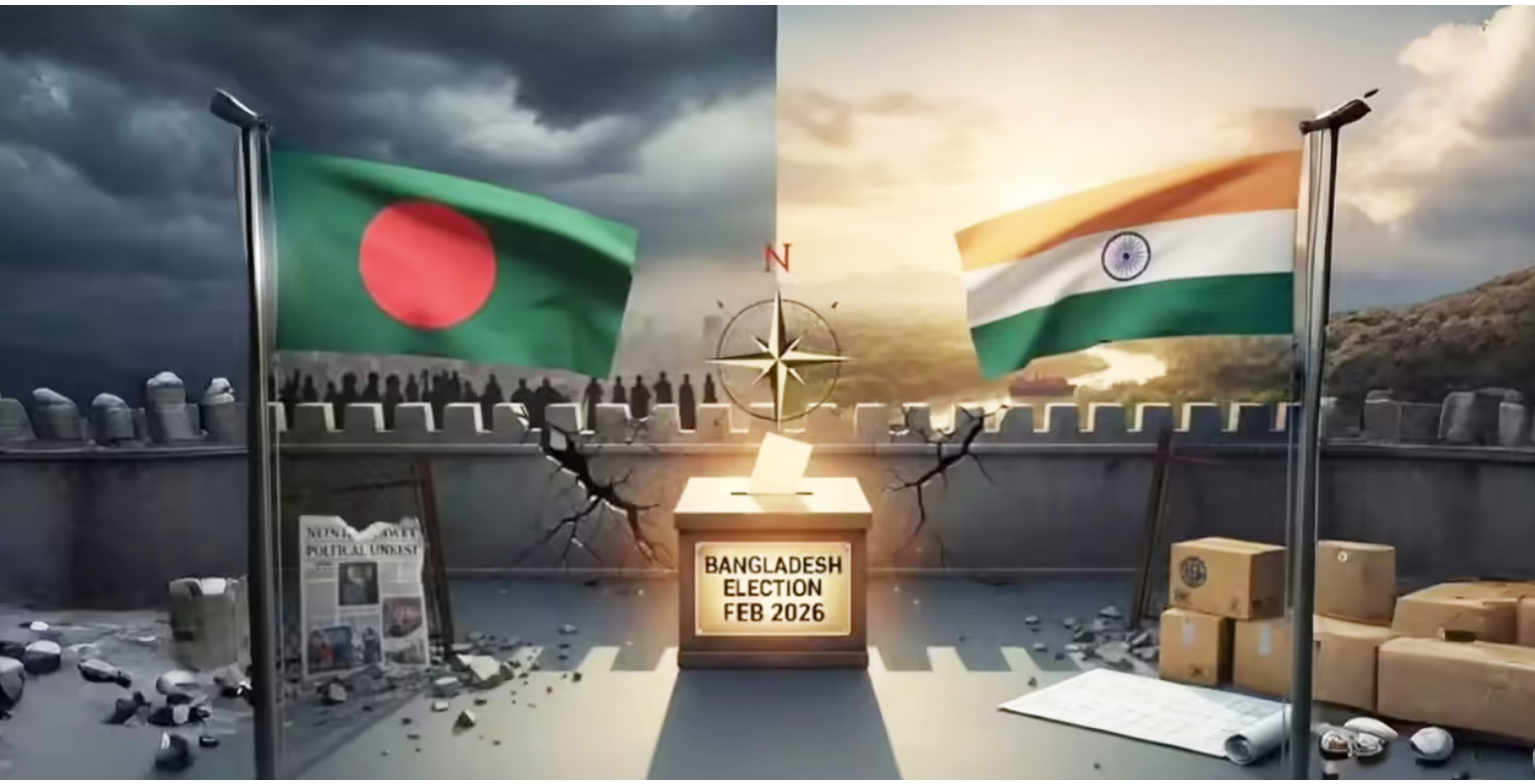

कर रही है। संगठनात्मक अनुशासन और स्पष्ट फोकस के मामले में वह आगे है। कांटे की लड़ाई में बीएनपी बहुमत के नजदीक पहुंच सकती है लेकिन स्पष्ट बहुमत न मिलने की स्थिति में उसे जमात या एनसीपी की बैसाखी चाहिये होगी। चुनाव के बाद या उससे पहले अप्रत्याशित गठबंधन, एनसीपी की खींचतान और टूट, युवा और शहरी मतदाता का रुझान, सोशल मीडिया-प्रभावित नैरेटिव, आवामी लीग के मतदाताओं का प्रत्याशित और एकमुश्त वोट ट्रांसफर या युवा मतदाता उन्माद या फिर तकरीबन 10 फीसदी हिंदू वोटरों का कुछ सीटों पर रुझान, बेहद कम मतदान वगैरह चुनावी नतीजों को या सरकार के गठन को ले कर चुनावी विश्लेषकों को चौंका सकते हैं।

भारत चाहेगा कि जमात-ए-इस्लामी सत्ता में न आये, उसकी सरकार बनने का मतलब है बांग्लादेश की बर्बादी और भारत विरोधी ताकतों का मजबूत होना। यह मान भी लिया जाए कि सत्ता में आने के बाद शरीयत कानून लागू कर महिलाओं और अल्पसंख्यकों को हाशिए पर धकेलने वाली पाकिस्तान की कठपुतली जमात-ए-इस्लामी सत्ता से दूर रह जायेगी पर इस बात की कोई गारंटी नहीं कि बीएनपी इतनी बंपर जीत हासिल कर ले कि उसे न तो धर्मांध जमात-ए-इस्लामी की जरूरत पड़े न ही मुखर भारत विरोधी एनसीपी की। अगर बीएनपी प्रचंड बहुमत के साथ सत्ता में आये तब भी उसके भीतर धार्मिक कट्टरता को बढावा देने वाले तत्व हैं जिनकी राय भारत के बारे में बेहतर नहीं है। रहमान का भी नारा है, "न दिल्ली, न पिंडी"। जमात के मुकाबले बीएनपी को एक अधिक उदार और लोकतांत्रिक विकल्प के रूप में देखना दिवास्वप्न है। भारत के लिये बीएनपी "दो बुरे विकल्पों में से कम बुरा" चुनने की मजबूरी जैसा है। ऐसे में बांग्लादेश में किसी पार्टी या गठबंधन की सरकार बने भारत ही नहीं बंग्लादेशियों की सकारात्मक क्रांतिकारी बदलाव के उम्मीदों पर खरी नहीं उतरने वाली। ●

संतोष कुमार

# बस्तर का संधिकाल

दशकों तक बस्तर की पहचान बंदूक, बारूदी सुरंग और माओवादी संघर्ष से तय होती रही। लेकिन 2026 के मुहाने पर यह इलाका एक नए टकराव में प्रवेश कर चुका है। गोलियों की आवाज़ भले धीमी पड़ गई हो, पर उनकी जगह खनन मशीनों और गिरते जंगलों की गूंज ने ले ली है। बस्तर अब विद्रोह नहीं, संसाधन और अस्मिता की सबसे कठिन लड़ाई का मैदान बनता जा रहा है।

दशकों तक, मध्य भारत का बस्तर क्षेत्र दुनिया के लिए केवल एक ही पहचान रखता था—लाल गलियारा। यहां का भूगोल बारूदी गूंज, माओवादी घात और राज्य की जवाबी कार्रवाई के बीच झूलता रहा है। लेकिन आज, 2026 के मुहाने पर, बस्तर एक ऐतिहासिक बदलाव के दौर से गुजर रहा है। यहां से बंदूकों की आवाज़ें धीरे-धीरे फीकी पड़ रही हैं, लेकिन उनकी जगह एक नई और शायद उससे भी अधिक शक्तिशाली गूंज ने ले ली है—सैकड़ों की संख्या में गिरते पेड़ों की चरमराहट और खनन मशीनों की घड़घड़ाहट।

बस्तर अब केवल एक 'विद्रोह क्षेत्र' नहीं रहा, बल्कि यह भारत के सबसे बड़े 'संसाधन युद्ध' का नया केंद्र बन गया है। जहां राज्य इसे 'दिसंबर 2030 तक देश का सबसे विकसित आदिवासी संभाग' बनाने का वादा कर रहा है, वहीं यहां के मूल निवासी अपनी जल-जंगल-जमीन की अखंडता को लेकर एक नए अस्तित्वगत संकट में हैं।

## पेद्दाकोड़ेपाल: एक शांत जंगल की चीख

बीजापुर जिले के पेद्दाकोड़ेपाल गांव के पास हाल ही में जो हुआ, वह उस संघर्ष की एक छोटी सी झलक है जो पूरे बस्तर में फैल रहा है। सोशल मीडिया पर प्रसारित वीडियो में जब ग्रामीण वन विभाग के अधिकारियों से पूछते हैं कि बिना ग्रामसभा की अनुमति के 100 एकड़ जंगल क्यों साफ कर दिया गया, तो उन्हें एक

ठंडा आधिकारिक जवाब मिलता है: 'परमिशन केंद्र सरकार से है और कटाई जारी रहेगी।'

प्रशासन इसे 'कूप' या 'कास्ट कटाई' कह रहा है—एक वैज्ञानिक वन प्रबंधन पद्धति जो पिछले 30 वर्षों से रुकी हुई थी क्योंकि माओवादी ट्रकों को जला देते थे। लेकिन आदिवासियों के लिए ये 'वैज्ञानिक' तरीके उनके जीवन के आधार को नष्ट कर रहे हैं। महुआ, तेंदु और चार के वे पेड़, जो सदियों से उनकी आजीविका का स्रोत थे, अब कंक्रीट और कोयले के लिए जगह खाली कर रहे हैं। यहां का विरोधाभास स्पष्ट है, जैसे-जैसे माओवाद अंतिम चरण में पहुंच रहा है, 'विकास' का बुलडोजर पहले से कहीं अधिक आक्रामक हो गया है।

## बस्तर का नया खजाना और 52,000 करोड़ का दांव

बस्तर की मिट्टी के नीचे दबा खजाना अब वैश्विक और घरेलू कॉरपोरेट घरानों के लिए एक 'चुंबकीय आकर्षण' बन चुका है। सितंबर 2025 में आयोजित 'बस्तर इन्वेस्टर कनेक्ट' प्रोग्राम इस बात का प्रमाण है कि राज्य अब इस क्षेत्र को केवल एक सैन्य चुनौती के रूप में नहीं, बल्कि एक आर्थिक अवसर के रूप में देख रहा है। लगभग 52,000 करोड़ रुपये के निवेश प्रस्तावों ने बस्तर के भविष्य की एक ऐसी तस्वीर खींची है जिसमें रेलवे लाइनें, मल्टी-स्पेशियलिटी अस्पताल और लग्जरी होटल शामिल हैं।

लेकिन इस विकास का आधार 'खनन' है। छत्तीसगढ़ माइंस के आंकड़ों के अनुसार, बस्तर संभाग के सातों जिलों में चूना पत्थर, डोलोमाइट, लौह अयस्क, टिन, सोना और यहां तक कि लिथियम के विशाल भंडार चिह्नित किए गए हैं। दंतेवाड़ा का बैलाडीला क्षेत्र, जो दशकों से एनएमडीसी का गढ़ रहा है, अब अडानी एंटरप्राइजेज, आर्सेलर मित्तल और रूंगटा सन्स जैसी निजी दिग्गजों के प्रवेश का द्वार बन गया है।

## पेसा और पांचवीं अनुसूची: कागजी ढाल और जमीनी प्रहार

भारतीय संविधान की पांचवीं अनुसूची और पेसा कानून आदिवासियों को अपनी जमीन पर संप्रभुता का अधिकार देते हैं। कानून कहता है कि किसी भी परियोजना के लिए ग्रामसभा की अनुमति अनिवार्य है। लेकिन पेद्दाकोड़ेपाल से लेकर आरिडोंगरी तक की कहानियां बताती हैं कि इन प्रावधानों को अक्सर 'विकास की गति' के नाम पर दरकिनार कर दिया जाता है।

विपक्ष और स्थानीय अधिकार कार्यकर्ताओं का आरोप है कि सरकार नक्सलवाद को खत्म करने के साथ-साथ 'अडानीवाद' को बढ़ावा दे रही है। सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों के माध्यम से बुनियादी ढांचा खड़ा करना और फिर उसे निजी हाथों में सौंपना एक ऐसी रणनीति के रूप में देखा जा रहा है, जिससे स्थानीय आदिवासी अपनी ही ज़मीन पर अजनबी बन सकते हैं। बस्तर के युवा अब केवल माओवादी या सुरक्षा बल नहीं बन रहे, वे अब 'स्मार्टफोन एक्टिविस्ट' बन रहे हैं जो जंगल के विनाश को रीयल-टाइम में दुनिया के सामने ला रहे हैं।

## 2030 का विजन: उन्नति या उजाड़?

केंद्रीय गृह मंत्री अमित शाह ने हाल ही में संकल्प लिया है कि 2030 तक बस्तर देश का सबसे उन्नत आदिवासी क्षेत्र होगा। सरकार का तर्क है कि नक्सलवाद ने बस्तर को दशकों पीछे धकेल दिया और अब उद्योगों, सड़कों और नौकरियों के माध्यम से इसकी क्षतिपूर्ति का समय आ गया है। पर्यटन उद्योग को बढ़ावा देने के लिए दी जा रही 45 प्रतिशत सब्सिडी और होम-स्टे जैसी योजनाएं स्थानीय लोगों को मुख्यधारा की अर्थव्यवस्था से जोड़ने की कोशिशें हैं।

परंतु, यहां का मूल प्रश्न 'अर्थशास्त्र' का नहीं, 'संस्कृति और आस्था' का है। बैलाडीला की पहाड़ियां आदिवासियों के लिए केवल 'लौह अयस्क के ब्लॉक' नहीं हैं, वे उनके देवताओं का निवास हैं। जब 'डिपॉजिट-13' या 'डिपॉजिट-4' की खुदाई होती है, तो केवल पहाड़ नहीं कटता, एक पूरी सभ्यता का विश्वास टूटता है।

## बस्तर का अधूरा प्रस्थान

बस्तर आज एक संधिकाल में खड़ा है। एक ओर दशकों के हिंसक माओवादी विद्रोह से मुक्ति की आशा है, तो दूसरी ओर अनियंत्रित औद्योगिक दोहन का डर। क्या बस्तर का विकास बस्तर के लोगों की शर्तों पर होगा, या वह केवल वैश्विक विनिर्माण इकाइयों के लिए 'कच्चे माल की मंडी' बनकर रह जाएगा?

बस्तर के जंगलों में पेड़ों की कटाई के खिलाफ उठते ग्रामीणों के सवाल दरअसल पूरे देश के लिए एक चुनौती हैं। सरकार का 'सिंगल-विंडो क्लीयरेंस' उद्योगों के लिए तो स्वर्णिम अवसर हो सकता है, लेकिन अगर वह ग्रामसभाओं के लिए 'क्लोज्ड-विंडो' बन गया, तो बस्तर का संघर्ष खत्म नहीं होगा, केवल उसका रूप बदल जाएगा। 2026 का बस्तर दुनिया को यह दिखा रहा है कि 'नक्सल-मुक्त' होना तो आसान हो सकता है, लेकिन 'विनाश-मुक्त' होना शायद सबसे बड़ी चुनौती है। बस्तर अब बंदूकों से नहीं, बल्कि अपनी अस्मिता और संसाधनों के हक के लिए संविधान के पन्नों से अपनी लड़ाई लड़ रहा है। और दुनिया, अपनी आँखों में 'विकसित बस्तर' का सपना लिए, इस अनिश्चित महागाथा को गौर से देख रही है। ●

# रामलीला मैदान की मुक्ति

मनोज कुमार

## फैज-ए-इलाही प्रकरणः सार्वजनिक भूमि कब्जे की मिसाल

दिल्ली की फिजाओं में तुर्कमान गेट का नाम केवल एक भौगोलिक पहचान नहीं है - यह इतिहास, प्रतिरोध और सत्ता के टकरावों का एक जीवंत गवाह है। लेकिन 6-7 जनवरी 2026 की उस दरम्यानी सर्द और स्याह रात ने एक नया अध्याय लिखा—एक ऐसा अध्याय जहां 32 बुलडोजरों की घड़घड़ाहट ने 20 साल पुराने कब्जे के साम्राज्य को कुछ ही घंटों में मलबे के ढेर में तब्दील कर दिया। यह कार्रवाई केवल एक अतिक्रमण हटाओ अभियान नहीं थी, बल्कि यह उस 'अर्बन डीके' (शहरी क्षरण) और 'इंस्टीट्यूशनल अपैथी' (संस्थागत उदासीनता) के विरुद्ध एक निर्णायक सर्जिकल स्ट्राइक थी, जिसने दिल्ली के ऐतिहासिक रामलीला मैदान के एक बड़े हिस्से को निगल लिया था।

जब रात के 1:30 बज रहे थे और पूरी पुरानी दिल्ली गहरी नींद में थी, तब प्रशासन ने वह किया जिसकी कल्पना किसी ने नहीं की थी। सुबह 8 बजे की निर्धारित योजना को अचानक तड़के में बदल देना केवल एक प्रशासनिक चतुराई नहीं थी, बल्कि यह कानून के उस प्रचंड प्रहार की तैयारी थी, जिसे किसी भी 'सुनियोजित प्रतिरोध' से बाधित नहीं होने देना था।

## 20 साल का मौन अतिक्रमण

तुर्कमान गेट के पास स्थित फैज-ए-इलाही मस्जिद के इर्द-गिर्द जो हुआ, वह भारतीय शहरों में सार्वजनिक भूमि पर कब्जे की एक 'क्लासिक' केस स्टडी है। नगर निगम के सूत्रों की मानें तो यह कब्जा रातों-रात नहीं हुआ। यह एक 'स्लो-पॉइजन' की तरह था। 20 साल पहले इसकी शुरुआत एक छोटे से नल से हुई, फिर शौचालय बना, फिर धीरे-धीरे पुस्तकालय, बारात घर और डायग्नोस्टिक सेंटर की दीवारें खड़ी हो गईं।

मस्जिद का मूल ढांचा महज 0.195 एकड़ में था, लेकिन इसके आसपास की करीब डेढ़ एकड़ जमीन (4047.55 स्क्वायर यार्ड) पर धीरे-धीरे एक अवैध साम्राज्य खड़ा कर लिया गया। विडंबना देखिए, इस अवैध कब्जे को 'लोक सेवा' का चोला पहनाया गया था—पुस्तकालय और दवाखाने के रूप में। लेकिन कानून की नज़र में, परोपकार के नाम पर की गई डकैती भी डकैती ही होती है। जिस जमीन की व्यावसायिक कीमत आज 2000 करोड़ आंकी जा रही है, वह किसी व्यक्ति या संस्था की नहीं, बल्कि दिल्ली की जनता की थी। यह रामलीला मैदान का हिस्सा था, जो इस शहर का फेफड़ा और उसकी राजनीतिक चेतना का केंद्र रहा है।

## बुलडोजर का न्याय और न्यायिक हथौड़ा

यह कार्रवाई अचानक नहीं हुई। यह दिल्ली हाईकोर्ट के उस आदेश की परिणति थी, जिसने दशकों से चल रहे इस कानूनी लुका-छिपी के खेल को खत्म कर दिया। जब कोर्ट ने स्पष्ट कर दिया कि मस्जिद से सटे ये ढांचे अवैध हैं, तो नगर निगम के पास कोई विकल्प नहीं बचा था।

डिप्टी कमिश्नर विवेक अग्रवाल के नेतृत्व में जो दस्ता वहां पहुंचा, वह केवल मशीनों के साथ नहीं, बल्कि कानून की अंतिम मुहर के साथ पहुंचा था। एमसीडी ने स्पष्ट किया कि 'पवित्र' और 'अवैध' के बीच एक स्पष्ट लकीर खींची गई है। मस्जिद के 0.195 एकड़ के मूल ढांचे को छुआ तक नहीं गया, जो प्रशासन की संवेदनशीलता और संवैधानिक मर्यादा का प्रमाण था। लेकिन उस सीमा के बाहर जो कुछ भी था - चाहे वह हॉल हो या आलीशान दिखने वाली डिस्पेंसरी -उसे ढहाने में कोई हिचक नहीं दिखाई गई।

यह दृश्य आधुनिक भारत की नई प्रशासनिक वास्तविकता का प्रतीक है, जहां 'बुलडोजर' अब केवल निर्माण का नहीं, बल्कि 'क्लींजिंग' (सफाई) का एक शक्तिशाली राजनीतिक और न्यायिक मेटाफर बन चुका है।

## पत्थर, आंसू गैस एवं डिजिटल सर्विलांस

लेकिन पुरानी दिल्ली की गलियों में कानून का रास्ता

कभी आसान नहीं रहा। जैसे ही बुलडोजरों ने पहली दीवार पर प्रहार किया, तुर्कमान गेट का सन्नाटा पत्थरों की गूंज और चीख-पुकार में बदल गया। करीब 25-30 लोगों के एक समूह ने, जो शायद इस कार्रवाई के लिए मानसिक रूप से तैयार थे, पुलिस पर पथराव शुरू कर दिया। कांच की बोतलें फेंकी गईं और माहौल को सांप्रदायिक रंग देने की कोशिश की गई।

जवाब में पुलिस को आंसू गैस के गोले दागने पड़े और लाठीचार्ज का सहारा लेना पड़ा। इस झड़प में पांच पुलिसकर्मी घायल हुए, लेकिन इस बार पुलिस 'बॉडीकेम' और 'ड्रोन' से लैस थी। 100 से ज्यादा फुटेज, सीसीटीवी और सोशल मीडिया वीडियो के जरिए उपद्रवियों की शिनाख्त की गई। भारतीय न्याय संहिता की धारा 221, 132 और 191 के तहत दर्ज एफआईआर यह बताती है कि अब 'भीड़ की हिंसा' के पीछे छिपना मुमकिन नहीं होगा। यह 21वीं सदी की पुलिसिंग है, जहां पत्थर फेंकने वाले की हर हरकत उपग्रह और सेंसर की नज़र में कैद है।

## ₹2000 करोड़ का मलबे में तब्दील होना

किसी भी शहर के लिए 2000 करोड़ की जमीन का मुक्त होना एक बड़ी आर्थिक और सामाजिक घटना है। नगर निगम के 300 से अधिक कर्मचारियों और अधिकारियों ने पूरी रात जागकर जो मलबा इकट्ठा किया, वह केवल कंक्रीट और ईंटों का ढेर नहीं था, बल्कि वह उस 'हिम्मत' का ढेर था जिसने दो दशकों तक राज्य की सत्ता को चुनौती दी थी।

32 बुलडोजर और 50 डंपर जो काम कर रहे थे, वह दिल्ली के

भविष्य के लिए एक संदेश था। रामलीला मैदान की यह जमीन, जो कभी जनसभाओं और ऐतिहासिक आंदोलनों का गवाह रही है, उसे फिर से उसके मूल स्वरूप में लौटाना शहरी नियोजन की एक बड़ी जीत है। प्रशासन ने पिछले साल तीन नोटिस दिए थे, लेकिन जैसा कि निगम के अधिकारी कहते हैं—धार्मिक स्थलों के मामले में नोटिस केवल एक 'औपचारिकता' बनकर रह जाते हैं क्योंकि 'वोट बैंक' की राजनीति अक्सर कानून के हाथ बांध देती है। लेकिन इस बार, हाईकोर्ट के सख्त रुख ने उन बेड़ियों को

काट दिया।

## तनाव के बाद का सन्नाटा: क्या यह स्थायी है?

कार्रवाई के अगले दिन, तुर्कमान गेट पर एक भारी सन्नाटा पसरा हुआ था। हर मोड़ पर पुलिस की तैनाती और मलबे से उठता धूल का गुबार उस रात की गवाही दे रहा था। बीएनए की धारा 164 लागू होने के साथ, पूरा इलाका एक छावनी में तब्दील हो गया था।

सवाल यह है कि क्या यह सन्नाटा किसी बड़े बदलाव की आहट है? दिल्ली जैसे महानगरों में, जहां ज़मीन की एक-एक इंच के लिए जंग होती है, इस तरह का 'मजबूत' प्रशासनिक कदम अन्य अवैध कब्जों के लिए एक मिसाल बनेगा। रामलीला मैदान की 4047.55 स्क्वायर यार्ड जमीन अब मुक्त है, लेकिन चुनौती इसे फिर से कब्जे से बचाने की है।

## कानून की संप्रभुता

तुर्कमान गेट की इस घटना ने एक बार फिर यह बहस छेड़ दी है कि क्या विकास और कानून के रास्ते में 'धार्मिक' या 'सामाजिक' ढाल का उपयोग जायज है? फैज-ए-इलाही मस्जिद को न छेड़ना यह साबित करता है कि राज्य धर्म का सम्मान करता है, लेकिन मस्जिद के नाम पर रामलीला मैदान की जमीन हड़पना 'अधर्म' है।

यह 2026 की दिल्ली है—एक ऐसी दिल्ली जो अब 'चलता है' वाली संस्कृति से ऊब चुकी है। यहाँ 2000 करोड़ की जमीन का कब्जा हटना केवल एक भूखंड की मुक्ति नहीं है, बल्कि यह उस विश्वास की बहाली है कि कानून अंततः अपना रास्ता ढूंढ ही लेता है, चाहे उसमें 20 साल ही क्यों न लग जाएं। रात के उस अंधेरे में जो बुलडोजर चले, उन्होंने सुबह के उजाले में एक साफ संदेश दिया है: सार्वजनिक संपत्ति पर किसी का व्यक्तिगत अधिकार नहीं हो सकता, और कानून के पंजे अब पहले से कहीं अधिक लंबे और डिजिटल रूप से सटीक हैं।

तुर्कमान गेट का यह मंजर इतिहास में उस क्षण के रूप में याद रखा जाएगा जब दिल्ली ने अपने 'खोए हुए गौरव' का एक टुकड़ा वापस पाने के लिए आधी रात को जागने का फैसला किया। ●

# प्रतीक्षा की देहरी पर ठहरी देह

## बिहार के वे गांव जहां पुरुष केवल स्मृतियों में रहते हैं...

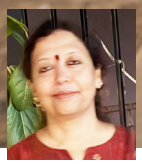

अरुणिमा चंद्रा

बिहार के गांवों में एक अनकहा सच सांस ले रहा है—यहां पुरुष जीवित होते हुए भी अनुपस्थित हैं। रोज़गार की तलाश में बाहर गए मर्दों के पीछे घर नहीं, प्रतीक्षालय छूट गए हैं, जहाँ स्त्रियाँ जीवन, श्रम और अकेलेपन का बोझ ढो रही हैं। ये गाँव प्रवासन की अर्थव्यवस्था नहीं, बल्कि उसके पीछे छूटे स्त्री-विलाप की सबसे मौन, सबसे मार्मिक तस्वीर हैं।

पटना की चमक-धमक वाली गलियों से बमुश्किल पचास किलोमीटर दूर, जहां धान के खेत और धूल भरी पगडंडियां एक-दूसरे में विलीन होती हैं, वहां जहानाबाद का नसरत गांव बसा है। इस गांव में प्रवेश करते ही एक अजीब सी शांति महसूस होती है—यह शांति किसी सुकून की नहीं, बल्कि एक स्थायी अभाव की है। यहां की हवाओं में पुरुषों के ठहाके नहीं, बल्कि चूड़ियों की खनक और बच्चों के रुदन के बीच घिरी महिलाओं की दबी हुई आहें तैरती हैं। नसरत कोई अकेला गांव नहीं है; यह बिहार के उन सैकड़ों गांवों का प्रतिनिधित्व करता है जहां पुरुष केवल आधार कार्ड के फोटो, शादी की पुरानी एल्बम या फोन की स्क्रीन पर ही जीवित रहते हैं।

यहां 'घर' का अर्थ बदल गया है। यहां घर का मतलब वह जगह नहीं है जहां परिवार साथ रहता है, बल्कि वह एक प्रतीक्षालय है जहां औरतें अपनी जवानी और उम्मीदें एक ऐसे रेमिटेंसेज से आने वाली रकम के इंतज़ार में गुज़ार देती हैं, जो कभी उनकी ज़रूरतों के लिए पूरा नहीं पड़ता।

### विदा होते सिंदूर की दास्तान

जूली देवी की आंखों में आज भी 2017 की वह सुबह तैरती है, जब उनकी

हथेलियों की मेहंदी अभी ठीक से उतरी भी नहीं थी। अनिल कुमार से शादी के सात फेरे लेने के ठीक एक महीने बाद, अनिल ने अपना झोला उठाया और बेंगलुरु की ओर चल दिए। जूली के लिए अनिल एक पति से ज़्यादा एक 'अनुपस्थित इकाई' बन गए। वह एक इलेक्ट्रीशियन हैं, जो दक्षिण भारत की चकाचौंध को रोशन करते हैं, जबकि उनके अपने घर में जुली एक धुंधली लालटेन की तरह अपनी किस्मत को संजो रही हैं।

बिहार से होने वाला यह महा-आप्रवासन कोई नया आंकड़ा नहीं है। सरकारी दस्तावेज़ कहते हैं कि लगभग 74.54 लाख लोग राज्य से बाहर रोटी की तलाश में हैं। लेकिन ये आंकड़े कभी उस 'भावनात्मक मलबे' का हिसाब नहीं देते जो पीछे छूट जाता है। दिल्ली, कोलकाता, मुंबई, पंजाब और हरियाणा की इमारतों को ईंट-दर-ईंट खड़ा करने वाले इन पुरुषों की अनुपस्थिति ने बिहार के ग्रामीण अंचलों को 'स्त्रियों के द्वीप' में बदल दिया है। यहां शादियां मिलन का उत्सव नहीं, बल्कि एक विदाई का अनुबंध बन गई हैं।

## उधार का जीवन और सौ रुपये की गरिमा

नसरत गांव की एक छोटी सी किराना दुकान इस विस्थापन की सबसे बड़ी गवाह है। यहां की महिलाओं का 'उधार खाता' उनके पतियों के वेतन से कहीं ज़्यादा लंबा है। जूली के पति महीने का पंद्रह हज़ार कमाते हैं और दस हज़ार घर भेजते हैं। गणित की भाषा में यह एक सम्मानजनक राशि लग सकती है, लेकिन जब पांच लोगों का पेट, बच्चों की पढ़ाई, सास की दवाई और घर की मरम्मत सामने खड़ी हो, तो यह दस हज़ार का नोट हाथ में आते ही रेत की तरह फिसल जाता है।

जूली कहती हैं, 'दस हज़ार में सांस लेना भी मुश्किल है। देवर और ननद पढ़े-लिखे हैं, पर बिहार की मिट्टी उन्हें कोई काम नहीं देती। इसलिए मुझे खेतों में खटना पड़ता है।'

यही वह मोड़ है जहां शोषण की नई परतें खुलती हैं। जब गांव में मर्द नहीं होते, तो ज़मीन के मालिक और ठेकेदार इन 'अकेली औरतों' को आसान शिकार समझते हैं। जूली और उनकी सास सुबह 9 बजे से शाम 6 बजे तक कड़ी धूप में पसीना बहाती हैं, और शाम को उनके हाथ में थमाया जाता है मात्र सौ रुपये का नोट। विडंबना देखिए, उसी काम के लिए किसी पुरुष को तीन सौ रुपये दिए जाते

हैं। यह केवल मज़दूरी का अंतर नहीं है, यह एक औरत की बेबसी की कीमत है। जूली जानती हैं कि अगर वह आवाज़ उठाएंगी, तो कल से यह सौ रुपये भी छिन जाएंगे।

## सन्नाटे की रातें और फोन वाली कूटनीति

एकल गृहस्थी चलाने वाली इन महिलाओं के लिए रातों का सन्नाटा किसी डरावने साये की तरह आता है। फरहाना फिरदौसी की कहानी इस डर की एक जीती-जागती तस्वीर है। उनके पति जहीर अंसारी मुंबई की धारावी में लेदर फैक्ट्री में पर्स बनाते हैं। वह साल में सिर्फ एक बार घर आते हैं। बाकी 350 दिन फरहाना अपने छह बच्चों के साथ एक ऐसे युद्ध में होती हैं जहां दुश्मन गरीबी और असुरक्षा है।

फरहाना बताती हैं, 'एक रात मेरे छोटे बेटे को तेज़ बुखार चढ़ा। वह दर्द से तड़प रहा था, लेकिन रात के अंधेरे में एक अकेली औरत बच्चे को लेकर अस्पताल कैसे जाए? पति होते तो बाहों में उठाकर ले जाते। मैं पूरी रात बस ऊपर वाले से दुआ मांगती रही कि सूरज जल्दी निकले।'

यह डर केवल बीमारी का नहीं है, यह उस सामाजिक संरचना का है जहां पुरुष के बिना एक घर को अधूरा और असुरक्षित मान लिया जाता है। इन महिलाओं के लिए प्यार अब फोन की कॉल और वीडियो चैट्स तक सिमट गया है। छठ जैसे महापर्व पर, जब पूरा बिहार अपने घर लौटता है, इन गांवों की सूनी गलियां और महिलाओं की उदास आंखें नीतीश सरकार के 'विकास' के दावों पर एक बड़ा प्रश्नचिन्ह लगाती हैं।

## कर्ज का जाल और मरती हुई उम्मीदें

बिहार के इन गांवों में आर्थिक आज़ादी एक भ्रम है। सुनैना देवी, जिनके पति चेन्नई में मज़दूरी करते हैं, आज छह लाख रुपये के कर्ज के बोझ तले दबी हैं। बेटी की शादी और घर की ज़रूरतों के लिए उन्होंने माइक्रोफाइनेंस कंपनियों से उधार लिया। ये कंपनियां मीठी बातों से जाल बिछाती हैं और 20 से 30 प्रतिशत की दर से ब्याज वसूलती हैं।

सुनैना कहती हैं, 'जीविका दीदी के नाम पर सरकार ने कुछ पैसे तो भेजे, पर वे ऊंट के मुंह में जीरा समान हैं। अब पति कह रहे हैं कि चेन्नई की कमाई से कर्ज नहीं उतरेगा, अब उन्हें विदेश (खाड़ी देश) जाना होगा।'

यह एक दुष्चक्र है। कर्ज चुकाने के लिए पति को दूर और दूर जाना होगा, और दूर जाने का मतलब है घर में मज़दूरी और असुरक्षा का एक और लंबा दौर। नसरत की हर दूसरी महिला पर औसतन बीस हज़ार का कर्ज है। वे गाय पालती हैं, खेतों में काम करती हैं, और अपनी रातों की नींद बेचकर ब्याज चुकाती हैं।

## मांओं की दुआ: मेरी बेटी का घर ऐसा न हो

इस आलेख का सबसे मार्मिक पहलू वह 'इच्छा' है जो ये महिलाएं अपनी अगली पीढ़ी के लिए संजोती हैं। फरहाना की बेटी 15 साल की है। वह घर के कामों में अपनी मां का हाथ बंटाती है और खामोशी से अपनी मां के संघर्ष को देखती है।

फरहाना की आवाज़ भर्रा जाती है जब वह कहती हैं, 'मैं नहीं चाहती कि मेरी बेटी की शादी ऐसे गांव या ऐसे परिवार में हो जहां उसे भी मेरी तरह अकेले दिन काटने पड़ें। मैं उसके लिए ऐसा लड़का ढूंढूंगी जो भले ही थोड़ा कम कमाए, पर हमारे पास रहे। यह अलगाव एक सजा है, और मैं नहीं चाहती कि मेरी बेटी यह सजा भुगते।'

## मिट्टी की पुकार और सत्ता का मौन

बिहार के इन गांवों की मिट्टी उपजाऊ है, पर यहां की संभावनाएं बंजर हो चुकी हैं। जूली, सुनैना और फरहाना जैसी हज़ारों महिलाएं आज बिहार के विकास के मॉडल का असली चेहरा हैं। वे केवल 'वोट बैंक' नहीं हैं, वे उस मूक त्रासदी की नायक हैं जिन्हें इतिहास अक्सर भुला देता है। नीतीश सरकार ने उद्योगों के लिए पैकेज तो घोषित किए, पर वे गांवों तक पहुंचते-पहुंचते दम तोड़ देते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में फैक्ट्रियों का न होना केवल एक आर्थिक विफलता नहीं है, बल्कि यह एक सामाजिक अपराध है जिसने हज़ारों परिवारों को छिन्न-भिन्न कर दिया है।

नसरत गांव की पगडंडियों पर शाम का धुंधलका उतर रहा है। महिलाएं अपने थके हुए शरीर लेकर खेतों से लौट रही हैं। उनकी आंखों में थकान है, पर वे जानती हैं कि घर जाकर उन्हें फिर से पिता और माता दोनों की भूमिका निभानी है। वे फिर से उसी फोन की घंटी का इंतज़ार करेंगी, वे फिर से उसी रेमिटेंस ने आने वाली रकम का हिसाब लगाएंगी। बिहार के ये गांव केवल भूगोल का हिस्सा नहीं हैं, ये उस 'बिछोह' की गाथा हैं जहां तरक्की का रास्ता हमेशा घर से बाहर की ओर जाता है। सरकारें बदलती हैं, नारे बदलते हैं, लेकिन इन महिलाओं की 'प्रतीक्षा' नहीं बदलती। जब तक बिहार की मिट्टी अपने बेटों को रोज़गार नहीं देगी, तब तक नसरत जैसे गांवों की देहरी पर बैठी ये स्त्रियाँ यूं ही सिसकती रहेंगी। ●

inn

# Never miss
## a good deal again

1.3 Million+ Hotels Worldwide

Best Price Guarantee

Book Now, Pay Later

Hassle-Free Cancellation

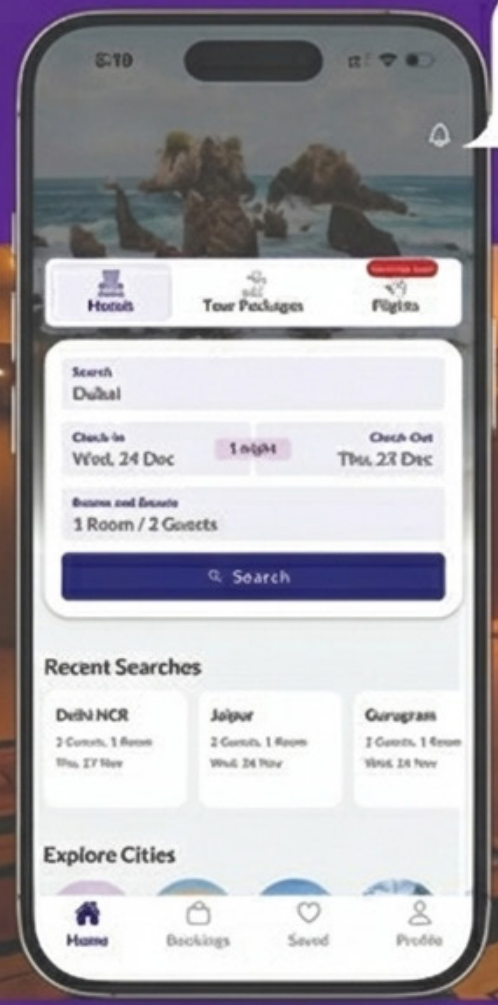

Download **Bidinn** App or visit **www.bidinn.in**

**30%** with code: **FLASH30**

संदीप कुमार

# डेटा पर पहरा

डिजिटल भारत के इस दौर में डेटा नई मुद्रा और नई सत्ता बन चुका है। इसी पृष्ठभूमि में लागू हुआ 'डिजिटल व्यक्तिगत डेटा संरक्षण कानून' पहली नजर में नागरिकों की निजता का रक्षक दिखता है, लेकिन इसकी परतें खोलने पर नियंत्रण और निगरानी की सघन संरचना उभरती है। सवाल यह नहीं कि डेटा सुरक्षित होगा या नहीं, सवाल यह है कि इस सुरक्षा की कीमत लोकतांत्रिक पारदर्शिता कितनी चुकाएगी।

टेक ग्लोबल इंस्टीट्यूट के विशेषज्ञों का मानना है कि यह कानून वास्तव में निजता की रक्षा करने के बजाय डेटा प्रोसेसिंग के पहलुओं को केवल एक सरकारी औपचारिकता में बदल देता है। सबसे चिंताजनक बात यह है कि कानून के हर नए संस्करण में सरकार ने अपनी शक्तियों का विस्तार किया है, जबकि नागरिकों के सुरक्षा उपाय उतने मज़बूत नहीं किए गए। सरकार के पास अब वह 'वीटो' शक्ति है जिसके माध्यम से वह किसी भी व्यक्तिगत डेटा तक पहुंच सकती है, और वह भी बिना किसी स्वतंत्र न्यायिक निगरानी के।

21वीं सदी के भारत में, जहां 140 करोड़ लोगों की आकांक्षाएं फाइबर ऑप्टिक केबल्स और वायरलेस तरंगों के माध्यम से दौड़ रही हैं, 'डेटा' अब केवल सूचना नहीं, बल्कि एक नया 'ईंधन' और 'मुद्रा' बन चुका है। इस डिजिटल महाकुंभ के बीच, भारत सरकार ने इसी महीने से 'डिजिटल व्यक्तिगत डेटा संरक्षण कानून' के रूप में एक नया डिजिटल विधान लागू किया है। यह कानून पहली नज़र में एक भव्य रक्षा-कवच की तरह दिखता है, जिसे अमेज़न, मेटा और ओपनएआई जैसी वैश्विक तकनीकी कंपनियों की बेलगाम डेटा-हवस को नियंत्रित करने के लिए गढ़ा गया है। लेकिन जैसे ही इस कानून की परतों को उलटते हैं, इसके भीतर छिपे अंतर्विरोध एक अलग ही कहानी बयां करते हैं। यह कहानी निजता की सुरक्षा से शुरू होती है, लेकिन सत्ता के विस्तार और सूचना के अधिकार के संकुचन पर जाकर ठहरती है।

## अमेज़न-मेटा पर लगाम: डेटा न्यूनीकरण का युग

इस नए कानून का सबसे चमकदार पक्ष वैश्विक तकनीकी दिग्गजों पर कसी गई लगाम है। अब मेटा और अमेज़न जैसी कंपनियां अपनी मर्जी से भारतीय उपभोक्ताओं के डेटा का भंडार नहीं बना सकेंगी। 'डेटा न्यूनीकरण' का सिद्धांत अब अनिवार्य कर दिया गया है, जिसका अर्थ है कि कंपनियां केवल उतना ही डेटा एकत्र कर सकेंगी जो किसी विशेष सेवा के लिए अपरिहार्य हो। 'स्पष्ट सहमति' को इस व्यवस्था की धुरी बनाया गया है। अब 'ऑप्ट-आउट' का विकल्प केवल एक बटन नहीं, बल्कि नागरिक का अधिकार है। डेटा लीक होने की स्थिति में कंपनियों की त्वरित जवाबदेही तय की गई है, जो भारतीय उपभोक्ताओं के लिए एक ऐतिहासिक मोड़ माना जा सकता है। सरकार इसे एक 'नागरिक-केंद्रित और नवाचारी ढांचा' कह रही है, जो डिजिटल संप्रभुता की दिशा में एक बड़ा कदम है।

## निगरानी का साया: निजता या औपचारिक प्रक्रिया?

परंतु, इस सिक्के का दूसरा पहलू उन विशेषज्ञों को डरा रहा है जो निजता को लोकतंत्र की पहली शर्त मानते हैं। आलोचकों का तर्क है कि यह कानून यूरोपीय संघ के 'सामान्य डेटा संरक्षण विनियमन' जैसा दिखने का प्रयास तो करता है, लेकिन उसकी आत्मा को आत्मसात करने में विफल रहता है। जहां जीडीपीआर एक स्वतंत्र और शक्तिशाली नियामक संरचना की वकालत करता है, वहीं भारत का कानून केवल चार सदस्यीय 'डेटा संरक्षण बोर्ड' के भरोसे 140 करोड़ लोगों की निजता की निगरानी सौंप देता है। प्रश्न यह उठता है कि क्या केवल चार व्यक्ति उस डिजिटल निगरानी तंत्र का मुकाबला कर पाएंगे जिसे राज्य और बड़ी कंपनियां संचालित करती हैं?

टेक ग्लोबल इंस्टीट्यूट के विशेषज्ञों का मानना है कि यह कानून वास्तव में निजता की रक्षा करने के बजाय डेटा प्रोसेसिंग के पहलुओं को केवल एक सरकारी औपचारिकता में बदल देता है। सबसे चिंताजनक बात यह है कि कानून के हर नए संस्करण में सरकार ने अपनी शक्तियों का विस्तार किया है, जबकि नागरिकों के सुरक्षा उपाय उतने मज़बूत नहीं किए गए। सरकार के पास अब वह 'वीटो' शक्ति है जिसके माध्यम से वह किसी भी व्यक्तिगत डेटा तक पहुंच सकती है, और वह भी बिना किसी स्वतंत्र न्यायिक निगरानी के।

## सूचना के अधिकार पर प्रहार: पारदर्शिता का अंत?

इस कानून का सबसे विवादास्पद और शायद सबसे घातक प्रभाव 'सूचना के अधिकार' पर पड़ता दिखाई दे रहा है। पिछले दो दशकों में आरटीआई ने भ्रष्टाचार के विरुद्ध भारत के सबसे मज़बूत हथियार के रूप में अपनी पहचान बनाई है। लेकिन डीपीडीपी कानून की आड़ में अब निजता को एक 'ढाल' की तरह इस्तेमाल

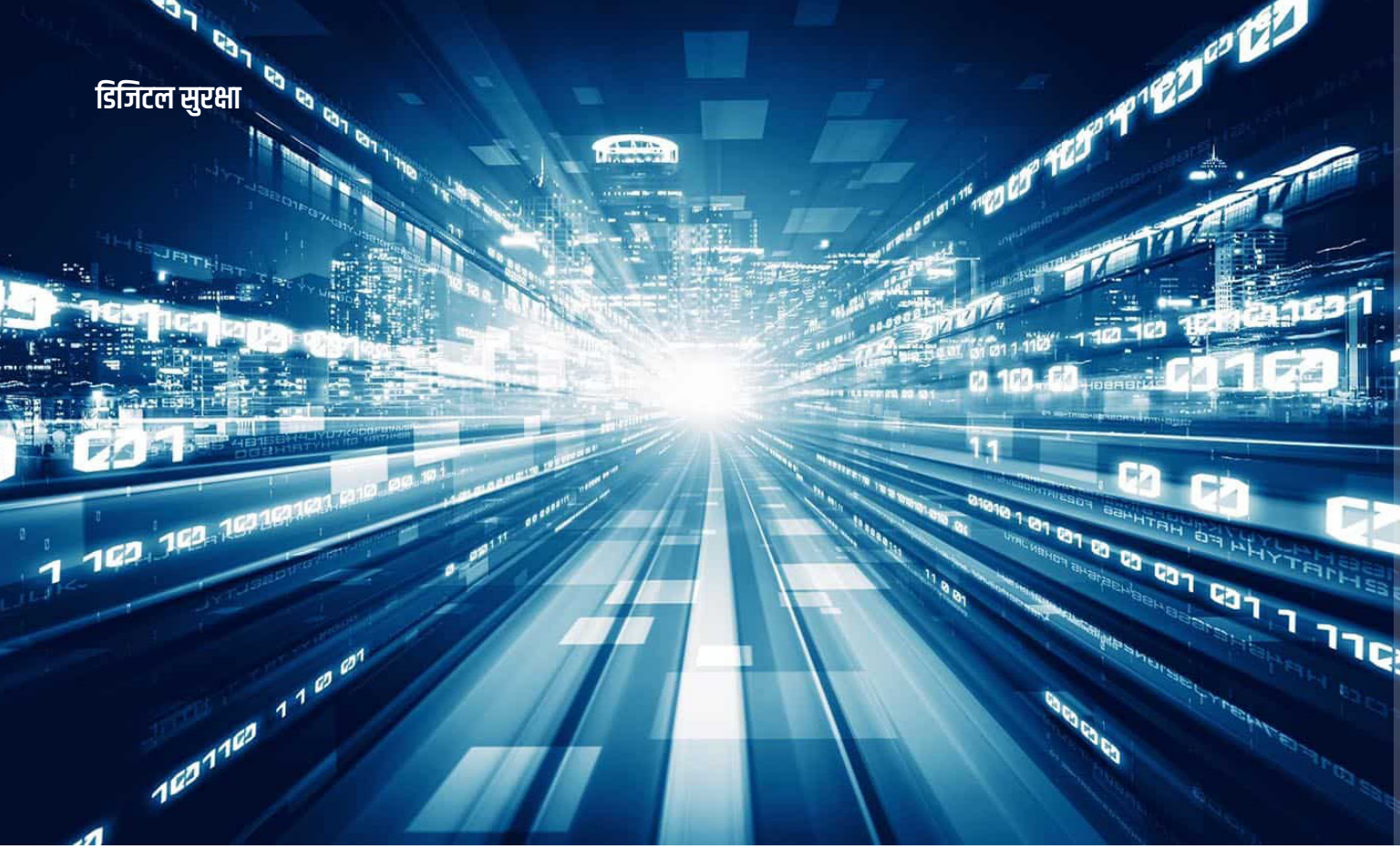

किया जा रहा है। पहले 'व्यापक सार्वजनिक हित' के आधार पर भ्रष्ट अधिकारियों या सरकारी बैंक के डिफाल्टरों की जानकारी सार्वजनिक की जा सकती थी, लेकिन अब निजता के नाम पर इस खिड़की को लगभग बंद कर दिया गया है।

अंजलि भारद्वाज जैसी सामाजिक कार्यकर्ताओं की चेतावनी इस डर को पुख्ता करती है कि अब सार्वजनिक ठेकेदारों के नाम या बैंकों से करोड़ों का कर्ज डकारने वालों की सूची 'निजी जानकारी' के लेबल तले छिपा ली जाएगी। यदि पारदर्शिता ही निजता की बलि चढ़ गई, तो सत्ता की जवाबदेही का क्या होगा? सरकार का दावा है कि आरटीआई कमजोर नहीं हुआ है, लेकिन धरातल पर यह 'निजता बनाम पारदर्शिता' की एक ऐसी जंग है जिसमें पलड़ा सत्ता की गोपनीयता की ओर झुकता दिख रहा है।

## मीडिया का मौन: खोजी पत्रकारिता का गला घोंटने की तैयारी?

लोकतंत्र का चौथा स्तंभ, यानी मीडिया, इस कानून के तहत सबसे अधिक असुरक्षित महसूस कर रहा है। पत्रकारों और समाचार संगठनों को 'महत्वपूर्ण डेटा फिड्यूशियरी' की श्रेणी में रखकर कानून ने खोजी पत्रकारिता की राह में कांटों की बाड़ बिछा दी है। अब किसी घोटाले या भ्रष्ट अधिकारी का नाम उजागर करने से पहले उसकी 'स्पष्ट सहमति' लेना क्या अनिवार्य होगा? यदि ऐसा है, तो खोजी पत्रकारिता केवल एक पीआर अभ्यास बनकर रह जाएगी।

एडिटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया और प्रेस क्लब की चिंताएं जायज हैं। कानून में पत्रकारिता के लिए स्पष्ट छूट का अभाव रिपोर्टिंग को 'डेटा प्रोसेसिंग' की एक जोखिम भरी श्रेणी में डाल देता है। इस पर सोने पे सुहागा है 250 करोड़ रुपये तक का भारी-भरकम जुर्माना। यह जुर्माना किसी भी स्वतंत्र मीडिया संस्थान की कमर तोड़ने के लिए काफी है। जब सूचनाएं जुटाना इतना महंगा और कानूनी रूप से जोखिम भरा हो जाएगा, तो मीडिया 'वॉचडॉग' की भूमिका निभाने के बजाय केवल सरकारी विज्ञप्तियों का वाहक बनकर रह जाएगा।

## सुरक्षा या नियंत्रण?

भारत का नया डेटा संरक्षण कानून एक दोधारी तलवार है। एक ओर जहां यह वैश्विक तकनीकी कंपनियों की मनमानी को चुनौती देता है और भारतीय नागरिकों को उनके डेटा पर कुछ हद तक नियंत्रण प्रदान करता है, वहीं दूसरी ओर यह राज्य को ऐसी शक्तियां देता है जो निगरानी तंत्र को और अधिक मज़बूत बना सकती हैं।

सबसे बड़ा संकट आरटीआई और स्वतंत्र पत्रकारिता पर मंडरा रहा है। निजता को भ्रष्टाचार का कवच नहीं बनना चाहिए, लेकिन डीपीडीपी कानून की वर्तमान रूपरेखा इसी दिशा में संकेत कर रही है। आने वाले समय में यह कानून तय करेगा कि भारत एक ऐसा डिजिटल लोकतंत्र बनेगा जहां नागरिक का डेटा सुरक्षित है, या फिर एक ऐसा 'निगरानी समाज' जहां डेटा के नाम पर पारदर्शिता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को ही मौन कर दिया गया है। 250 करोड़ का जुर्माना और चार लोगों का बोर्ड—यह समीकरण सुरक्षा से ज्यादा नियंत्रण का आभास कराता है। भारत ने निजता का पहरा तो बैठा दिया है, लेकिन देखना यह है कि यह पहरा नागरिक की रक्षा के लिए है या सत्ता को और अधिक अभेद्य बनाने के लिए। ●

# ऑपरेशन सिंदूर के बाद राजकोष की आहुति

संदीप कुमार

**पहलगाम आतंकी हमले के बाद 'ऑपरेशन सिंदूर' को सरकार ने राष्ट्रीय संकल्प और सैन्य दृढ़ता का प्रतीक बताया। लेकिन गोलियों की गूंज थमते ही कूटनीति के नाम पर जो खर्चीला तमाशा शुरू हुआ, उसने इस पराक्रम को प्रश्नों के घेरे में ला दिया। आरटीआई से सामने आए आंकड़े बताते हैं कि आतंक के जवाब में हथियार नहीं, बल्कि राजकोष की आहुति दी गई।**

पहलगाम के रास्तों पर 22 अप्रैल 2025 को गूंजी आतंकी गोलियों ने 26 निर्दोषों की जान लेकर देश को आक्रोश से भर दिया था। इसके प्रतिशोध में 7 मई 2025 को भारतीय सेना ने 'ऑपरेशन सिंदूर' के माध्यम से सीमा पार आतंकी ठिकानों को ध्वस्त किया, जिसे सरकार ने अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति के रूप में पेश किया। सैन्य पराक्रम की इस गाथा के साथ ही सरकार ने आतंकवाद के विरुद्ध 'जीरो टॉलरेंस' और अपनी कार्रवाई को अंतरराष्ट्रीय वैधता दिलाने के लिए एक व्यापक कूटनीतिक अभियान की रूपरेखा तैयार की। लेकिन आज जब सूचना के अधिकार से इस अभियान के आधिकारिक दस्तावेज़ सामने आ रहे हैं, तो यह प्रश्न खड़ा होता है कि क्या यह वास्तव में कूटनीति थी या राजकोष की बलि चढ़ाकर किया गया एक भव्य 'राजनीतिक पर्यटन'?

इस घटनाक्रम की सबसे विचलित करने वाली सच्चाई उन आंकड़ों में है, जो करदाताओं की गाढ़ी कमाई की बर्बादी बयां करते हैं। मात्र 18 दिनों के भीतर सरकार ने 32 देशों में 7 बहुदलीय प्रतिनिधिमंडलों को भेजने पर कुल 13 करोड़ 11 लाख 16 हजार 647 रुपये खर्च कर दिए। सूक्ष्मता से देखें तो औसतन 72 लाख 84 हजार रुपये प्रतिदिन केवल इसलिए फूंक दिए गए ताकि 59 नेताओं और पूर्व राजनयिकों का लश्कर दुनिया भर के आलीशान होटलों में कूटनीति का स्वांग रच सके। क्या वैश्विक जनमत तैयार करने के लिए हमारे पास दूतावासों और पेशेवर राजनयिकों का पहले से मौजूद विस्तृत ढांचा पर्याप्त नहीं था?

इस कूटनीतिक पर्यटन की बारीकियां किसी शाही विलासिता जैसी हैं। सबसे अधिक खर्च रविशंकर प्रसाद के नेतृत्व वाले समूह पर हुआ। फ्रांस, इटली और जर्मनी जैसे समृद्ध देशों की 14 दिवसीय यात्रा पर इस दस सदस्यीय दल ने 3 करोड़ 44 लाख रुपये व्यय किए। यानी प्रति व्यक्ति औसतन 34 लाख रुपये। विडंबना देखिए, जब खर्च का ब्यौरा मांगा गया, तो इटली स्थित दूतावास ने 'रणनीतिक गोपनीयता' का बहाना बनाकर जानकारी छुपा ली। डेनमार्क और बेल्जियम में होटलों और परिवहन पर करोड़ों लुटाए गए, जहां बेल्जियम में केवल ठहरने का खर्च ही 10 लाख रुपये से ऊपर था।

यही हाल कांग्रेस सांसद शशि थरूर के नेतृत्व वाले नौ सदस्यीय दल का रहा, जिसने अमेरिका और ब्राजील जैसे देशों की यात्रा पर 2 करोड़ 8 लाख रुपये खर्च किए। डेनमार्क यात्रा के दौरान केवल फोटो-वीडियो बनाने पर 2.67 लाख रुपये उड़ाए गए। कंबोडिया में सिम कार्ड और टॉक-टाइम पर हजारों का खर्च यह दर्शाता है कि जनप्रतिनिधियों ने राजकोष को निजी सुख-सुविधाओं का अक्षय पात्र मान लिया था। विपक्ष भी इस लूट में पीछे नहीं रहा; द्रमुक सांसद कनिमोझी के नेतृत्व वाले दल ने पांच देशों में 1.90 करोड़ रुपये व्यय किए, जहां प्रति व्यक्ति औसत खर्च 27 लाख रुपये रहा। शिवसेना नेता श्रीकांत शिंदे के दल ने यूएई और अफ्रीका में 1.53 करोड़ रुपये खर्च किए, जो कूटनीति कम और शाही विलासिता अधिक जान पड़ती है। 21वीं सदी के डिजिटल युग में, जहां वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग ने दूरियां मिटा दी हैं, 59 लोगों के जत्थे को भौतिक रूप से विदेशों में भेजने की रणनीतिक विफलता स्पष्ट है। यदि हमारे राजदूत भारत का पक्ष समझाने में असमर्थ थे, तो यह हमारी विदेश नीति की सबसे बड़ी हार है। इस 13 करोड़ रुपये के भारी-भरकम निवेश का परिणाम क्या रहा? क्या पाकिस्तान को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर 'आतंकवाद प्रायोजित देश' घोषित कराया जा सका? क्या उस पर कोई कड़े प्रतिबंध लगे? इन सभी प्रश्नों का उत्तर नकारात्मक है।

स्पष्ट है कि यह पूरी कवायद अंतरराष्ट्रीय कूटनीति से अधिक घरेलू 'नैरेटिव' को नियंत्रित करने का एक सुनियोजित प्रयास था। जनता को यह दिखाने की कोशिश की गई कि पूरी दुनिया भारत के कदमों में है, जबकि असल में यह केवल एक 'पॉलिटिकल स्पेक्टेकल' था। लोकतंत्र में जनता का धन निजी संपत्ति नहीं होती। जापानी होटलों में लाखों के भत्ते और अल्जीरिया में सिम कार्ड पर हजारों का खर्च नेतृत्व में सार्वजनिक धन के प्रति संवेदनशीलता के अभाव को दर्शाता है।

'ऑपरेशन सिंदूर' सैन्य वीरता की कहानी हो सकती है, लेकिन उसके बाद का यह कूटनीतिक अभियान रणनीतिक दीवालियेपन और राजकोष की लूट की शर्मनाक दास्तान है। ●

# जाति की ओट व कानून की चोट



सतीश चंद्रा

उत्तर प्रदेश में जाति केवल पहचान नहीं, बल्कि सत्ता, सम्मान और सामाजिक सुरक्षा का औज़ार रही है। लेकिन बीते वर्ष में सरकार का एक आदेश इस सदियों पुराने ढांचे को चुनौती देता दिख रहा है - सार्वजनिक जीवन से जाति के उल्लेख पर पूर्ण प्रतिबंध। सवाल यह नहीं कि आदेश सही है या नहीं, सवाल यह है कि क्या क़ानून की कलम उस सामाजिक सच को मिटा सकती है, जिस पर प्रदेश की राजनीति सांस लेती है।

उत्तर प्रदेश की धूल भरी सड़कों पर दौड़ती एसयूवी गाड़ियों के पीछे लिखे 'ब्राह्मण', 'क्षत्रिय', 'गुर्जर' या 'यादव' जैसे शब्द केवल अक्षरों का समूह नहीं हैं; ये उस दंभ, पहचान और शक्ति के प्रतीक हैं जो इस प्रदेश की नसों में सदियों से बह रही है। लेकिन नवंबर 2025 के इस दौर में, लखनऊ के सत्ता गलियारों से निकला एक नया फरमान इन प्रतीकों पर प्रहार कर रहा है। उत्तर प्रदेश सरकार ने एक साहसी, मगर विवादास्पद कदम उठाते हुए सार्वजनिक स्थानों, कानूनी दस्तावेजों, पुलिस रिकॉर्ड और राजनीतिक रैलियों में 'जाति' के उल्लेख पर पूर्ण प्रतिबंध लगाने का निर्देश दिया है। यह आदेश एक ऐसे प्रदेश में आया है जहां पालने से लेकर श्मशान तक का रास्ता जाति की पगडंडियों से होकर गुजरता है। प्रश्न यह है कि क्या कार्यवाहक मुख्य सचिव दीपक कुमार की कलम से निकला यह आदेश उस पांच हजार साल पुरानी सामाजिक अधिरचना को ढहा पाएगा, जिसके आधार पर उत्तर प्रदेश की राजनीति और समाज का ढांचा खड़ा है?

## अदालत का हंटर और संवैधानिक शुचिता

इस पूरे घटनाक्रम की पटकथा इलाहाबाद हाईकोर्ट के उस 28 पन्नों के ऐतिहासिक फैसले से लिखी गई, जिसने उत्तर प्रदेश की पुलिसिया कार्यप्रणाली की जड़ों को हिला दिया। मामला 29 अप्रैल 2023 की एक सामान्य लगने वाली

इस पूरे घटनाक्रम की पटकथा इलाहाबाद हाईकोर्ट के उस 28 पन्नों के ऐतिहासिक फैसले से लिखी गई, जिसने उत्तर प्रदेश की पुलिसिया कार्यप्रणाली की जड़ों को हिला दिया। मामला 29 अप्रैल 2023 की एक सामान्य लगने वाली पुलिस कार्रवाई से शुरू हुआ था, जहां शराब की तस्करी में पकड़ी गई एक स्कॉर्पियो और उसके अभियुक्त प्रवीण छेत्री की पहचान के साथ पुलिस ने उसकी जाति नत्थी कर दी थी।

पुलिस कार्रवाई से शुरू हुआ था, जहां शराब की तस्करी में पकड़ी गई एक स्कॉर्पियो और उसके अभियुक्त प्रवीण छेत्री की पहचान के साथ पुलिस ने उसकी जाति नत्थी कर दी थी। हाईकोर्ट ने इस पर सख्त रुख अपनाते हुए कहा कि एफआईआर और गिरफ्तारी मेमो में जाति का उल्लेख करना न केवल असंवैधानिक है, बल्कि यह समाज को विभाजित करने वाला कृत्य है।

अदालत का तर्क स्पष्ट था - कानून की नज़र में अपराधी की कोई जाति नहीं होती। कोर्ट ने एक क्रांतिकारी सुझाव भी दिया - अभियुक्तों की पहचान के लिए पिता के साथ मां का नाम भी शामिल किया जाए, ताकि पितृसत्तात्मक ढांचे में लैंगिक समानता का समावेश हो सके। सरकार का वर्तमान आदेश इसी न्यायिक हंटर की परिणति है। अब उत्तर प्रदेश के थानों के नोटिस बोर्ड, वाहनों के साइनबोर्ड और पुलिस नियमावली (एसओपी) से जाति शब्द को खुरचने की तैयारी है। यहां तक कि सोशल मीडिया के उस 'डिजिटल अखाड़े' पर भी निगरानी रखी जाएगी जहां जातीय गौरव के मीम्स और कंटेंट के जरिए आए दिन तलवारें खिंचती हैं।

## विरोध का स्वर: पहचान और अधिकार की जंग

लेकिन जैसा कि उत्तर प्रदेश की राजनीति का इतिहास रहा है, यहां कोई भी आदेश निर्वात में काम नहीं करता। सरकार के इस कदम ने उसके अपने ही कुनबे में खलबली मचा दी है। विशेष रूप से वे दल, जिनका अस्तित्व ही जातीय अस्मिता की नींव पर टिका है, इसे अपनी जड़ों पर प्रहार मान रहे हैं। निषाद पार्टी के संस्थापक और योगी सरकार में कैबिनेट मंत्री संजय निषाद का स्वर इस बेचैनी का सबसे मुखर उदाहरण है। निषाद पार्टी (निर्बल इंडियन शोषित हमारा आम दल) के लिए 'निषाद' शब्द केवल एक जाति नहीं, बल्कि एक राजनीतिक सौदेबाजी की शक्ति है।

संजय निषाद का तर्क है कि जातियों का एक गौरवशाली इतिहास रहा है और उन्हें अपना हिस्सा लेने के लिए संगठित होना ही पड़ता है। वे पूछते हैं कि यदि जाति की पहचान ही मिटा दी जाएगी, तो पिछड़े और वंचित वर्गों को उनका हक कैसे मिलेगा? यह एक बड़ा विरोधाभास है—एक ओर संविधान जातिविहीन समाज की कल्पना करता है, तो दूसरी ओर 'जाति प्रमाण पत्र' और 'आरक्षण' जैसी व्यवस्थाएं उसी पहचान को कानूनी आधार प्रदान करती हैं। ऐसे में, जाति को दस्तावेजों से हटाना क्या केवल एक कॉस्मेटिक बदलाव बनकर रह जाएगा या यह वास्तव में किसी सामाजिक परिवर्तन की आहट है?

## राजनीतिक बिसात और 'पीडीए' का नैरेटिव

यह आदेश एक ऐसे समय में आया है जब उत्तर प्रदेश पंचायत चुनावों की दहलीज पर खड़ा है और केंद्र सरकार ने हाल ही में विपक्ष के दबाव में जनगणना में जाति के कॉलम को जोड़ने की सैद्धांतिक सहमति दी है। विपक्षी खेमे के रणनीतिकार, विशेष रूप

मुद्दा

से समाजवादी पार्टी के मुखिया अखिलेश यादव, इसे भाजपा की 'घबराहट' के रूप में देख रहे हैं। अखिलेश यादव का 'पीडीए' (पिछड़ा, दलित, अल्पसंख्यक) का नैरेटिव पूरी तरह से जातीय गोलबंदी पर आधारित है।

यादव का प्रहार सीधा और तीखा है—वे कहते हैं कि शासन-प्रशासन के हर महत्वपूर्ण पद पर अपने सजातीय लोगों को बैठाने के बाद अब भाजपा 'जातिविहीन' होने का ढोंग कर रही है। उनका प्रश्न उस ऐतिहासिक घटना की ओर भी इशारा करता है जब मुख्यमंत्री आवास को 'गंगाजल' से धुलवाया गया था। विपक्ष के लिए जाति केवल पहचान नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय की लड़ाई का हथियार है। उनके अनुसार, जाति का अपमानजनक भेदभाव खत्म होना चाहिए, न कि उसकी पहचान, क्योंकि पहचान ही वह धुरी है जिसके इर्द-गिर्द हाशिए पर खड़े लोग सत्ता में अपनी हिस्सेदारी मांगते हैं।

## कानूनी अनिवार्यता बनाम सामाजिक वास्तविकता

उत्तर प्रदेश के संदर्भ में 'जाति' को छिपाना या मिटाना हिमालय को समतल करने जैसा दुष्कर कार्य है। यहां की राजनीति में भाजपा ने भी पिछले वर्षों में 'जातीय सम्मेलनों' और पार्टी पदाधिकारियों की सूची में जातियों के उल्लेख के जरिए ही अपनी पैठ मज़बूत की है। अपना दल (एस), निषाद पार्टी और सुहेलदेव भारतीय समाज पार्टी जैसे गठबंधन सहयोगी भाजपा के 'सोशल इंजीनियरिंग' के वे पुर्जे हैं जो विशिष्ट जातियों का वोट बैंक समेटते हैं।

इस नए आदेश के बाद इन पार्टियों के सामने पहचान का संकट खड़ा हो गया है। क्या अब गुर्जर सम्मेलन, ब्राह्मण सम्मेलन या क्षत्रिय महाकुंभ बीते दिनों की बात हो जाएंगे? नोएडा और गाजियाबाद के आसपास गुर्जर सम्मेलनों के होर्डिंग हटाए जाने की खबरें इस आदेश के प्रभाव की गवाही दे रही हैं, लेकिन क्या यह प्रभाव स्थायी होगा? पूर्व में भी वाहनों पर जाति सूचक शब्दों को लेकर कई बार प्रतिबंध लगाए गए, जुर्माना लगाया गया, लेकिन हकीकत यह है कि सड़कों पर 'जाट', 'पंडित' और 'राजपूत' लिखे वाहनों की संख्या कम नहीं हुई। जातीय गौरव यहाँ एक 'सब-कल्चर' की तरह विकसित हो चुका है, जिसे केवल जुर्माने या आदेश से नहीं बदला जा सकता।

## डिजिटल निगरानी की चुनौतियां

सरकार ने इस बार सोशल मीडिया पर भी नकेल कसने की बात कही है। 2025 के इस दौर में, इंस्टाग्राम और एक्स (X) जैसे प्लेटफॉर्म जातीय युद्ध के नए मैदान हैं। 'यादव ब्रांड', 'गुर्जर दबदबा' या 'ठाकुर साहब' जैसे हैशटैग के साथ अपलोड होने वाले रील और वीडियो युवाओं के बीच जातीय श्रेष्ठता के भाव को हवा देते हैं। आईटी नियमों को मज़बूत कर इन पर रोक लगाना तकनीकी रूप से संभव हो सकता है, लेकिन मनोवैज्ञानिक रूप से यह उन युवाओं को और अधिक विद्रोही बना सकता है जो अपनी पहचान को संकट में महसूस करेंगे।

## एक अधूरा प्रस्थान

उत्तर प्रदेश सरकार का यह निर्णय कानूनी रूप से प्रशंसनीय और संवैधानिक रूप से सही दिशा में उठाया गया कदम लग सकता है, लेकिन सामाजिक धरातल पर यह एक 'पैराडॉक्स' (विरोधाभास) से भरा है। आप पुलिस रिकॉर्ड से जाति हटा सकते हैं, आप रैलियों पर रोक लगा सकते हैं, लेकिन आप उस 'इमोशनल इंटेलिजेंस' का क्या करेंगे जो व्यक्ति को उसकी जाति से जोड़ती है?

अखिलेश यादव की यह बात गौर करने लायक है कि ₹हमारा पहला भावनात्मक रिश्ता जाति ही होती है।₹ भारत के ग्रामीण और अर्ध-शहरी समाज में जाति केवल भेदभाव का जरिया नहीं है, बल्कि वह एक 'सोशल सिक्योरिटी नेट' (सामाजिक सुरक्षा तंत्र) भी है। जब तक जाति के आधार पर होने वाला वास्तविक भेदभाव, छुआछूत और अवसरों का असमान वितरण खत्म नहीं होता, तब तक केवल शब्दों पर प्रतिबंध लगाना ₹घाव को ढंकने₹ जैसा होगा, उसे ₹भरने₹ जैसा नहीं।

उत्तर प्रदेश इस समय एक संधिकाल में है। एक ओर आधुनिकता और विकास की दौड़ है, तो दूसरी ओर पांच हजार साल पुराना संस्कारों का बोझ। हाईकोर्ट और सरकार की यह कोशिश यदि ईमानदारी से लागू हुई, तो यह एक नए और अधिक समतावादी उत्तर प्रदेश की शुरुआत हो सकती है। लेकिन यदि यह केवल चुनावी गणित को साधने या अदालती अवमानना से बचने का एक रास्ता भर है, तो आने वाले समय में जातीय अस्मिता और अधिक उग्र रूप में सामने आएगी। जाति का यह जिन्न अब बोतलबंद होने को तैयार नहीं है, क्योंकि उसे सत्ता के स्वाद की लत लग चुकी है। देखना यह होगा कि 2026 के चुनावों में क्या मतदाता 'जातिविहीन' होकर वोट करेगा या फिर पर्दे के पीछे से वही पुरानी पहचानें अपनी कहानी कहेंगी। ●

# एमाइलोडिओसिस: एक 'अदृश्य' चुनौती

सौम्या वर्मा

**एमाइलोडिओसिस के विरुद्ध बहु-विषयक मॉडल और आयुष्मान भारत में एकीकरण की मांग के बीच, देश के पहले वर्चुअल क्लिनिक ने उपचार की नई उम्मीद जगाई है।**

वैश्विक स्वास्थ्य के गलियारों में दुर्लभ बीमारियां अक्सर हाशिए पर रह जाती हैं। लेकिन नई दिल्ली के विश्व युवक केंद्र में आयोजित राष्ट्रीय संवाद ने एमाइलोडिओसिस—एक ऐसी स्थिति जहां शरीर के अंगों में असामान्य प्रोटीन जमा होने लगता है—को चर्चा के केंद्र में लाकर एक नई बहस छेड़ दी है। 'निराशा से जुड़ी देखभाल तक' केवल एक स्लोगन नहीं था, बल्कि यह एक उभरते हुए भारत के लिए 'कनेक्टेड हेल्थकेयर' का नया ब्लूप्रिंट था।

एम्स, दिल्ली की डॉ. तुलिका सेठ ने इस विमर्श को एक कड़वी वास्तविकता के साथ शुरू किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि एमाइलोडिओसिस जैसी बीमारी का मुकाबला केवल अस्पताल के कमरों में नहीं किया जा सकता; इसके लिए एक 'बहु-विषयक उपचार मॉडल' की आवश्यकता है। डॉ. सेठ का सबसे साहसिक सुझाव इसे 'आयुष्मान भारत' योजना के दायरे में लाना था। यह प्रस्ताव केवल बजटीय मांग नहीं है, बल्कि यह चिकित्सा समानता का एक ठोस तर्क है—कि किसी बीमारी का 'दुर्लभ' होना, उसके इलाज के अभाव का बहाना नहीं बनना चाहिए। इस पूरे आंदोलन के पीछे एक गहरा मानवीय संघर्ष भी छिपा है। एमाइलोडिओसिस सपोर्ट ग्रुप ऑफ इंडिया के संस्थापक प्रो. (डॉ.) सतीश चंद्रा इस लड़ाई को अपनी नसों में महसूस करते हैं। स्वयं इस रोग से पीड़ित होने के कारण उनका अनुभव इसे 'कैंसर से भी अधिक घातक' करार देता है। इसी व्यक्तिगत पीड़ा ने एक डिजिटल समाधान को जन्म दिया है—जनवरी 2026 से शुरू होने वाला भारत का पहला 'वर्चुअल एमाइलोडिओसिस क्लिनिक'। यह क्लिनिक भौगोलिक दूरियों को मिटाकर सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों के मरीजों को सीधे विशेषज्ञों की मेज तक ले आएगा। विश्व युवक केंद्र के सीईओ उदय शंकर सिंह ने इस बात को रेखांकित किया कि स्वास्थ्य सेवा केवल विज्ञान नहीं, बल्कि सामाजिक एकजुटता का विषय है। ऑनलाइन माध्यम से जुड़े 300 से अधिक प्रतिभागियों ने यह सिद्ध कर दिया कि डिजिटल इंडिया के युग में दुर्लभ बीमारियों के खिलाफ जागरूकता अब 'वर्चुअल' से 'वास्तविक' बदलाव की ओर बढ़ रही है।

संस्था के मीडिया एडवाइजर श्रीराजेश ने कहा कि भारत इस समय एक स्वास्थ्य परिवर्तन के मुहाने पर खड़ा है। एमाइलोडिओसिस जैसे रोगों का प्रबंधन केवल मशीनों से नहीं, बल्कि नीति, संवेदना और तकनीक के समन्वय से संभव है। डॉ. तुलिका और डॉ. सतीश चंद्रा की यह पहल यह साबित करती है कि भले ही बीमारी दुर्लभ हो, लेकिन उससे लड़ने वाली सामूहिक इच्छाशक्ति अब वैश्विक स्तर की है। ●

# अवनीत का लहंगा और इंटरनेट की धड़कनें!

कहते हैं फैशन सिर्फ कपड़े नहीं होता, वो एक बयान होता है—और अवनीत कौर ने तो हाल ही में ऐसा स्टेटमेंट दे दिया कि सोशल मीडिया ने चाय छोड़कर वही चर्चा पकड़ ली।

मौका था एक इवेंट का, लेकिन नज़रों का केंद्र बन गया अवनीत का लहंगा—जो उतना ही चमकीला था जितनी उनकी मुस्कान और उतना ही चर्चित जितनी उनकी रील्स। जैसे ही अवनीत कैमरों के सामने आईं, फोटोग्राफ़र्स ने ज़ूम किया और इंटरनेट ने रीलोड। कुछ फैंस बोले, "वाह! क्या ग्रेस है!" कुछ ने कहा, "ये लहंगा है या ट्रेंडसेटर?"

और बाकी लोग बस स्क्रीनशॉट लेने में व्यस्त थे।

दिलचस्प बात ये है कि अवनीत ने न कोई लंबा-चौड़ा बयान दिया, न सफ़ाई—बस अपने अंदाज़ में तस्वीरें डालीं और कैप्शन ऐसा कि लोगों ने लहंगे से ज्यादा उस पर रिसर्च शुरू कर दी। फैशन एक्सपर्ट्स इसे "बोल्ड लेकिन बैलेंस्ड" बता रहे हैं, वहीं सोशल मीडिया की जनता इसे "शादी सीज़न की प्रेरणा" घोषित कर चुकी है।

वैसे अवनीत के साथ ये पहली बार नहीं है। पहले भी उनके आउटफिट्स अक्सर ट्रेंड में रहे हैं—कभी ड्रेस, कभी साड़ी, और अब ये लहंगा। लगता है अवनीत ने फैशन की किताब में एक नया चैप्टर जोड़ दिया है:

**"कम बोलो, स्टाइल बोलने दो।"**

अब सवाल ये नहीं कि लहंगा कैसा था, सवाल ये है कि अगली बार अवनीत क्या पहनेंगी?

# फुलेरा की रिंकी के लुक ने ढाया कहर

'पंचायत' की मासूम सी रिंकी अब किसी पहचान की मोहताज नहीं रहीं—उनकी सादगी, मुस्कान और देसी स्वैग ने लाखों दिलों पर कब्ज़ा कर लिया है। फुलेरा गांव की मिट्टी से निकली ये रिंकी असल जिंदगी में इतनी खूबसूरत हैं कि कैमरा भी शर्मा जाए। पर्दे पर जहां वह सूट-सलवार में दिल जीत लेती हैं, वहीं रियल लाइफ में उनके ट्रेडिशनल लुक्स देखकर तो 'सचिव जी' ही नहीं, पूरी जनता फिदा हो जाती है।

बीते 8 जनवरी को सान्विका ने अपना 36वां जन्मदिन सेलिब्रेट किया, लेकिन उम्र? वो तो उनकी मुस्कान देखकर कहीं गायब ही लगती है। सोशल मीडिया पर एक्ट्रेस ने जैसे ही अपनी ट्रेडिशनल फोटोज़ शेयर कीं, लाइक्स और कमेंट्स की बरसात शुरू हो गई। कोई लिख रहा है—"देसी ब्यूटी अलर्ट!", तो कोई कह रहा—"रिंकी ने फिर दिल चुरा लिया।"

सूट, साड़ी और सादगी—तीनों में परफेक्ट!

सान्विका की खास बात ये है कि उन्हें भारी मेकअप या चमक-दमक की ज़रूरत नहीं। एक सिंपल सूट, खुले बाल और चेहरे पर वही पुरानी मासूम मुस्कान—बस इतना ही काफी है इंटरनेट को पिघलाने के लिए। उनकी ट्रेडिशनल तस्वीरें देखकर साफ है कि ग्लैमर का मतलब सिर्फ बोल्ड नहीं होता। ●

# कार्तिक आर्यन फिर बने लव-लाइफ के हीरो?

बॉलीवुड के हार्टथ्रोब कार्तिक आर्यन एक बार फिर फिल्मों से ज्यादा अपनी पर्सनल लाइफ को लेकर सुर्खियों में हैं। इंडस्ट्री के गलियारों में फुसफुसाहट है कि कार्तिक इन दिनों सिर्फ स्क्रिप्ट ही नहीं, बल्कि दिल का चैप्टर भी नए सिरे से लिख रहे हैं।

सूत्रों की मानें तो कार्तिक अपनी आने वाली फिल्म की शूटिंग के दौरान एक को-स्टार के काफ़ी करीब आ गए हैं। सेट पर दोनों की केमिस्ट्री सिर्फ कैमरे तक सीमित नहीं रही—कॉफ़ी ब्रेक, लंबी बातचीत और एक-दूसरे के फोन में खोए रहना सब कुछ लोगों की नज़रों से बच नहीं पाया। खबर है कि शूट खत्म होने के बाद भी कार्तिक अक्सर उसी लोकेशन पर रुक जाते हैं, जहां उनकी ये खास दोस्त मौजूद होती हैं। हाल ही में दोनों को एक प्राइवेट डिनर के बाद एक ही गाड़ी में निकलते देखा गया—बस फिर क्या था, बॉलीवुड गॉसिप मशीन ऑन!

हमेशा की तरह इस बार भी कार्तिक ने सवालों पर वही पुरानी स्माइल दे दी—ना हां, ना ना। लेकिन इंडस्ट्री जानती है, जब कार्तिक चुप रहते हैं तब कहानी ज़रूर पक रही होती है!

याद दिला दें, इससे पहले भी कार्तिक का नाम कई एक्ट्रेसेज़ के साथ जुड़ चुका है, लेकिन हर बार मामला "दोस्ती" तक सिमट गया। अब सवाल ये है—क्या ये भी एक और अफवाह है? या कार्तिक आर्यन सच में फिर से रोमांटिक हीरो बनने जा रहे हैं, इस बार रियल लाइफ में?

फिलहाल तो इतना तय है—कार्तिक की फिल्में बॉक्स ऑफिस पर चलें या न चलें, उनकी लव-लाइफ हमेशा सुपरहिट रहती है! ●

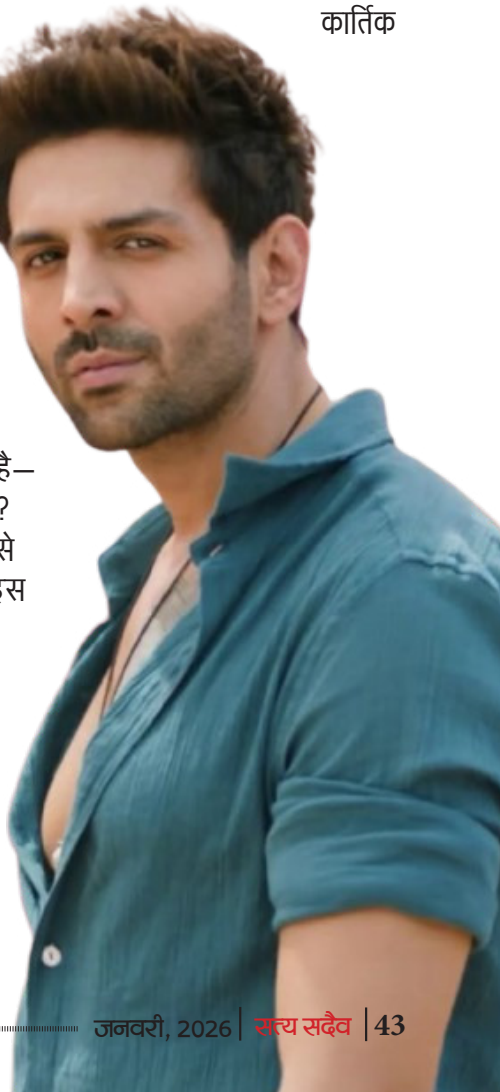

# वैभव सूर्यवंशी भविष्य का 'विराट'

क्रिकेट के खेल में रिकॉर्ड्स तो कई बनते हैं, लेकिन कुछ खिलाड़ी स्वयं में एक ऐसी 'परिघटना' बन जाते हैं, जो स्कोरबोर्ड से अधिक जनमानस की जिज्ञासा को प्रभावित करते हैं। वर्ष 2025 की गूगल सर्च रिपोर्ट ने इस तथ्य पर मुहर लगा दी है कि समस्तीपुर, बिहार का 14 वर्षीय किशोर वैभव सूर्यवंशी आज देश की सामूहिक चेतना का नया केंद्र है। वह 2025 में सबसे ज्यादा सर्च किया जाने वाला भारतीय बन गया है, जिसने लोकप्रियता के मामले में राजनीति, सिनेमा और स्थापित खेल दिग्गजों को पीछे छोड़ दिया। यह केवल एक खिलाड़ी की उपलब्धि नहीं, बल्कि एक बदलते युग का संकेत है जहाँ प्रतिभा की चमक डिजिटल आंकड़ों के माध्यम से राष्ट्रव्यापी विमर्श बनती है।

वैभव की क्रिकेट यात्रा किसी आधुनिक परीकथा से कम नहीं लगती। बिहार जैसे राज्य में, जहाँ क्रिकेट की बुनियादी सुविधाओं और पेशेवर अकादमियों का घोर अभाव रहा है, वहाँ से एक विश्वस्तरीय प्रतिभा का उभरना किसी रणनीतिक चमत्कार जैसा है। वैभव के पिता संजीव सूर्यवंशी ने मात्र चार वर्ष की आयु में उसके हाथों में बल्ला थमाकर जिस प्रशिक्षण की नींव रखी, वह आज भारतीय क्रिकेट का भविष्य बन चुका है। बिहार की अंडर-19 टीम से शुरू हुआ यह सफर बहुत जल्द राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय रिकॉर्ड्स की फेहरिस्त में बदल गया। वसीम जाफर जैसे दिग्गजों ने वैभव के खेल को उसकी उम्र से कहीं अधिक परिपक्व बताया, जो उसके तकनीकी कौशल की गहराई को दर्शाता है। वैभव ने मात्र 12 साल 284 दिन की आयु में रणजी ट्रॉफी में पदार्पण कर इतिहास रचा, लेकिन उसका असली 'रणनीतिक धमाका' सितंबर 2024 में ऑस्ट्रेलिया के विरुद्ध यूथ टेस्ट में हुआ। महज 58 गेंदों पर शतक जड़कर उसने अंडर-19 क्रिकेट में सबसे तेज भारतीय शतक का रिकॉर्ड अपने नाम किया। यह पारी केवल रनों का संग्रह नहीं थी, बल्कि तेज गेंदबाजों के विरुद्ध उसके फौलादी इरादों और स्पष्ट शॉट चयन का प्रदर्शन थी। इसी निरंतरता ने उसे IPL 2025 की नीलामी में राजस्थान रॉयल्स तक पहुँचाया, जहाँ उसे 1.10 करोड़ रुपये की बोली मिली। राजस्थान रॉयल्स, जो युवा प्रतिभाओं को तराशने के लिए विख्यात है, ने वैभव को वह मंच दिया जिसने उसे 'ग्लोबल ब्रांड' बना दिया। गुजरात टाइटंस के विरुद्ध 35 गेंदों पर लगाया गया शतक न केवल IPL इतिहास का दूसरा सबसे तेज शतक था, बल्कि इसने वैभव को टूर्नामेंट का सबसे युवा शतकवीर बना दिया।

IPL के बाद भी वैभव का 'रिकॉर्ड-ब्रेकिंग' सिलसिला थमा नहीं है। हाल ही में अंडर-19 एशिया कप में उसने 182.51 के स्ट्राइक रेट से 261 रन बनाकर अपनी आक्रामक बल्लेबाजी का लोहा मनवाया। इसी दौरान यूएई के विरुद्ध 95 गेंदों पर 171 रनों की अविश्वसनीय पारी खेली। वहीं विजय हजारे ट्रॉफी में उसने दक्षिण अफ्रीका के महान बल्लेबाज एबी डीविलियर्स का रिकॉर्ड तोड़ते हुए लिस्ट-ए क्रिकेट में सबसे तेज 150 रन (मात्र 59 गेंदों में) बनाने की ऐतिहासिक उपलब्धि हासिल की। 14 साल की उम्र में पुरुषों के प्रथम श्रेणी और लिस्ट-ए क्रिकेट में शतक बनाना यह सिद्ध करता है कि वैभव का संघर्ष केवल उम्र के स्तर पर नहीं, बल्कि क्रिकेट की उच्चतम श्रेणियों में अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने का है। तकनीकी दृष्टि से वैभव का 'हैंड-आई कोऑर्डिनेशन' और गेंद की गति को भांपने की क्षमता उसे असाधारण बनाती है। दबाव की स्थितियों में उसका शांत फुटवर्क और आत्मविश्वास उसे एक भविष्य का 'महान खिलाड़ी' घोषित करता है। बिहार सरकार द्वारा घोषित इनामी राशि और गूगल पर उसकी बढ़ती खोज यह बताती है कि वैभव सूर्यवंशी अब केवल एक नाम नहीं, बल्कि भारतीय क्रिकेट के क्षितिज पर वह चमकता सितारा है जो आने वाले दशकों तक खेल के मानचित्र को प्रभावित करने की क्षमता रखता है। वैभव का उदय यह प्रमाणित करता है कि यदि संकल्प दृढ़ हो और तकनीक स्पष्ट, तो संसाधनों का अभाव सफलता की राह में बाधा नहीं बन सकता। ●

VANSHI BUILDTECH
Pvt. Ltd.

# NEW YEAR 2026

Happy New Year 2026!
Building new beginnings,
stronger futures,
and lasting trust together.

**Sanjay Jindal,** *Dirctor*

HAPPY
New Year
2026
नववर्ष 2026 की शुभकामनाएं!
आइए मिलकर करें नए
सपनों की शुरुआत,
मजबूत निर्माण और
विश्वास से भरा भविष्य।
– संदीप जिंदल